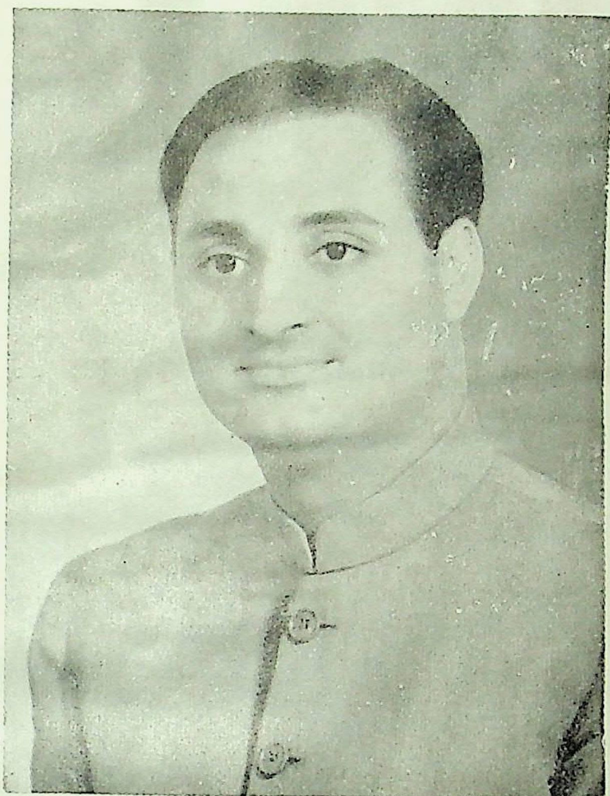


मुझे प्रसन्नता है कि अकादमी के नए निर्णय के अनुसार अकादमी-पत्रिका 'शीराज़ा' के वर्ष में दो अंक हिन्दी में भी प्रकाशित होंगे। यह एक उपयोगी निर्णय है, क्योंकि इस तरह 'शीराज़ा' हिन्दी पाठकों तथा लेखकों में भी सम्पर्क स्थापित कर सकेगा। हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि हम हिन्दी 'शीराज़ा' के माध्यम से स्थानीय लेखकों, विचारकों तथा देश के दूसरे प्रदेशों के साहित्यकारों को एक दूसरे के निकट ला सकें।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र-भाषा है; 'शीराज़ा' का हिन्दी-संस्करण पत्रिका के महत्व को बढ़ाएगा और मैं इस प्रयास की सफलता के लिए अपनी शुभ कामनाएं भेजता हूं।

डा० कर्णसिंह,
सदरे-रियासत
जम्मू-कश्मीर राज्य

१६ दिसम्बर, १९६४

शीराज़ा

[हिन्दी]

लेख

काव्य-धारा

कथा-साहित्य

स्तम्भ







सफलता की कामना

"मेरे लिए यह प्रसन्नता की बात है कि अब अकादमी की पत्रिका 'शीराज़ा' हिन्दी में भी प्रकाशित हुआ करेगी। पहले 'शीराज़ा' के वर्ष-भर में केवल छः अंक उर्दू में निकलते थे; अब यह निर्णय किया गया है कि यह पत्रिका मासिक-रूप से प्रकाशित हुआ करेगी, और इसके दो दो अंक हिन्दी, कश्मीरी और डोगरी में भी निकला करेंगे।

जहां कश्मीरी और डोगरी हमारी दो मुख्य क्षेत्रीय भाषाएं हैं, वहां हमारी रियासत में शिक्षा और सांस्कृतिक जीवन में हिन्दी को भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

मुझे विश्वास है कि 'शीराज़ा' के हिन्दी संस्करण रियासत तथा बाहर की हिन्दी-भाषी जनता के बीच एक लाभदायक कड़ी सिद्ध होंगे।

मैं इस प्रयत्न की सफलता की कामना करता हूँ।"

ख्वाजा जी० एम० सादिक
प्रधानमन्त्री,
(जम्मू व कश्मीर)
जम्मू।

शीराज़ा (हिन्दी)

हिन्दी 'शीराज़ा' का यह प्रवेशांक आपको सस्नेह समर्पित है।

हिन्दी पत्रिका का यह नाम आपको कुछ अनोखा अवश्य प्रतीत होगा लेकिन यही नाम रखने की एक अनिवार्यता थी।

'शीराज़ा' नाम से एक द्वैमासिक उर्दू पत्रिका हमारी अकादमी की ओर से कुछ वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इसी को अब मासिक पत्रिका का रूप दे दिया गया है और निर्णय किया गया है कि उर्दू के छः अंकों के अतिरिक्त हिन्दी, कश्मीरी तथा डोगरी भाषाओं में भी इसके दो-दो अंक निकाले जाएं। इसी निर्णय के अनुसार हिन्दी शीराज़ा का यह प्रथम अंक प्रकाश में आया है। इस निर्णय का रियासत के तथा देश के अन्य भागों के साहित्यकारों, साहित्यिक संस्थाओं तथा प्रबुद्ध पाठकों ने हर्ष और उत्साह से स्वागत किया है। उनके सहयोग के लिए हम हृदय से आभारी हैं।

प्रस्तुत अंक में केवल रियासत के ही लेखक-लेखिकाओं की रचनाएं दी गई हैं। इनके द्वारा आपको रियासत में हिन्दी की साधना और उसकी विकास-प्रक्रिया की एक झलक मिल सके तो हमारा यह प्रयास सुचारु रूप से पुरस्कृत हो जाएगा। हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी शीराज़ा के आगे प्रकाशित होने वाले अंकों के लिए रियासत के बाहर के साहित्यिकों और मनीषियों का यथेष्ट सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

प्रत्येक सम्पादक की यही कामना होती है कि उसके द्वारा सम्पादित पत्रिका में पाठ्य-सामग्री ऊंचे स्तर की, रोचक तथा ज्ञानवर्धक हो। पत्रिका की छपाई त्रुटि-रहित और साज-सज्जा आकर्षक हो। हम इनमें से किसी भी बात का दावा नहीं करते। १५-२० दिनों की अल्प अवधि में हमें यह अंक छपवा कर प्रकाशित करना पड़ा है। प्रकाशन की स्थानीय सुविधाएं अनेक प्रकार से सीमित और अपूर्ण हैं।

हमारे इस प्रयास का सही मूल्यांकन तो सहृदय पाठक ही करेंगे। उनकी सम्मति तथा सुझाव हमारे लिए उपयोगी होंगे।

अन्त में हम अकादमी के प्रधान संरक्षक डा० कर्णसिंह जी (सदरे रियासत), अकादमी के प्रधान श्री जी० एम० सादिक (प्रधान मन्त्री) तथा अकादमी के उप-प्रधान श्री गिरधारी लाल डोगरा (अर्थ मंत्री) के प्रति हार्दिक आभार प्रगट करते हैं, जिन्हों ने हिन्दी शीराज़ा के प्रकाशन पर हर्ष प्रगट करके तथा शुभकामनाएं भेजकर हमारा उत्साह बढ़ाया है।

—नरेन्द्र खजूरिया

शुभ कामनाएँ

- **श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, फीरोज़ाबाद**

  ...'शीराज़ा' की सफलता हृदय से चाहता हूं।

- **श्री यशपाल, लखनऊ**

  ...विश्वास है कि आपका यह प्रयत्न राष्ट्र की समुच्च संस्कृति और भावात्मक एकता के लिए प्रोत्साहन होगा।

- **श्री बालकृष्ण राव, सम्पादक—माध्यम—इलाहाबाद**

  ...यह जान कर बहुत हर्ष हुआ कि जम्मू-कश्मीर की अकादमी ने 'शीराज़ा' नाम की साहित्यिक पत्रिका के प्रकाशन का निश्चय किया है...सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामनाएं स्वीकृत करें।

- **श्री विष्णु प्रभाकर, दिल्ली**

  ...निश्चय ही यह एक महत्वपूर्ण निर्णय है। भावात्मक एकता के लिए यह कदम निस्सन्देह रचनात्मक प्रमाणित होगा। मेरी शुभ कामनाएं स्वीकार करें।

- **श्री बांकेबिहारी भटनागर—सम्पादक—साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नई दिल्ली**

  ...हिन्दी के राज-भाषा पद पर प्रतिष्ठित हो जाने से प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह उसके प्रचार प्रसार में योग दे। मेरा विश्वास है कि अकादमी तथा उसके द्वारा प्रकाशित पत्रिका के माध्यम से यह कार्य अधिकाधिक सम्पन्न हो सकेगा। मेरी शुभ कामनाएं आप के साथ हैं।

- **श्री प्रभाकर माचवे, नई दिल्ली**

  ...आप अकादमी की साहित्यिक पत्रिका 'शीराज़ा' (हिन्दी) निकालने जा रहे हैं, यह समाचार जान कर बहुत प्रसन्नता हुई। मेरा सहयोग आप के साथ है।

- **डा० शम्भुनाथ सिंह, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वाराणसी**

  ...हार्दिक प्रसन्नता हुई......आप जैसे सुयोग्य...कहानीकार के सम्पादन में यह पत्रिका दिनों-दिन प्रगति कर सकेगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। ...... मंगल कामना करता हूं।

[शेष पृष्ठ ३२ पर]



सफल आयोजन

मुझे यह जान कर अति प्रसन्नता हुई है कि 'शीराज़ा' के जो अंक अब हिन्दी में भी प्रकाशित होंगे।

मैं चाहता हूं इस पत्रिका द्वारा जम्मू-कश्मीर में हिन्दी लेखन को बढ़ावा मिले और राज्य की सांस्कृतिक सरगर्मियों से शेष भारत को परिचित करवाया जाए।

'शीराज़ा' सही अर्थों में हमारी संस्कृति का प्रतिनिधि बने, यही मेरी कामना है।

मुझे आशा है आपकी सम्पादन दक्षता में यह आयोजन सफल रहेगा।

जी० एल० डोगरा,
वित्त-मन्त्री,
जम्मू-कश्मीर राज्य

१८ जनवरी, १९६५

"नीलमत पुराण की ये लघु कथायें कश्मीर के भूभागों को केवल देवत्व ही प्रदान नहीं करतीं अपितु उनके माध्यम से धार्मिक समन्वय और सांस्कृतिक एकता का प्रसार भी करती हैं। इन गाथाओं में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, बुद्ध, नाग, पिशाच-यक्ष सभी ने घुल-मिल कर एक ही संस्कृति का ताना बुनने का कार्य किया है। जलोद्भव की कथा से देवों के इस मित्रभाव की प्रतीति होती है।"

डा० वेद कुमारी एम० ए०, पी० एच० डी०

नीलमत पुराण में धार्मिक समन्वय की प्रेरणा

पुराणों में हमें हिन्दु धर्म के उस स्वरूप के दर्शन होते हैं जो अपने भीतर इस देश में प्रचलित प्रायः तत्कालीन सभी धार्मिक विचारधाराओं, सामाजिक रीतियों और परम्पराओं को समेटे हुए है। नीलमत पुराण में कश्मीर की प्राचीन संस्कृति से सम्बद्ध बड़ी रोचक सामग्री मिलती है। इस में कश्मीर की भौगोलिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति का विशद् विवरण है। कल्हण ने भी अपने ग्रन्थ राजतरंगिणी में, इतिहास ग्रन्थ के रूप में इस पुराण का महत्त्व स्वीकार किया है।

पुराणों में उपलब्ध भौगोलिक वर्णनों की यह एक प्रमुख विशेषता है कि उनमें भारत की भूमि, मिट्टी, रेत और पत्थरों का ढेर भर नहीं अपितु एक जीवित शक्ति है। भारत की नदियां, निर्झर, वन और पर्वत जड़ वस्तु नहीं अपितु पावन देव देवियों के

रूप में उपस्थित होते हैं। भारत भूमि के प्रति जन-मानस की इस अटूट श्रद्धा का प्रमाण हमें देश के हर कोने में स्थित तीर्थों के नामों और उनके विवरणों में मिलता है। नीलमतपुराण में भी स्थान स्थान पर इसी प्रकार की भावनायें अभिव्यक्त की गई हैं। इनके अनुसार झरनों, नदियों और पर्वतों की इस शस्य-श्यामला भूमि का कण कण पावन है। [1]वैशम्पायन जनमेजय को बतलाते हैं कि पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं वे सब कश्मीर भू पर वर्तमान हैं। यहां पर नागों के पवित्र स्रोत, पुण्य पर्वत शिखर, पुण्यसलिला नदी और सरोवर पवित्र देवालय और आश्रम हैं।[2] प्रत्येक झरना किसी न किसी नाग का स्थान है। प्रत्येक नदी किसी न किसी देवी का परिवर्तित स्वरूप है। हर शिखर किसी न किसी तपस्वी की तपोभूमि है।

नीलमत की ये लघु कथायें कश्मीर के भूभागों को केवल देवत्व ही प्रदान नहीं करतीं अपितु उनके माध्यम से धार्मिक समन्वय और सांस्कृतिक एकता का प्रसार भी करती हैं। इन गाथाओं में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, बुद्ध, नाग, पिशाच, यक्ष, सभी ने घुल-मिल कर एक ही संस्कृति का ताना बुनने का कार्य किया है। जलोद्भव की कथा[3] से देवों के इस मित्रभाव की प्रतीति होती है। कश्मीर तथा उसके आस-पास के प्रदेशों की जनता को जलोद्भव ने अत्यन्त पीडित कर रखा था। दार्वाभिसार, गान्धार, जुहुण्डर, शक, खश, तङ्गण, माण्डव, मद्र सभी जातियों को उनके देश से भगा कर वह उन सूने प्रदेशों में विचरण करता था। एक बार नील की प्रार्थना पर ऋषि कश्यप वहां आए। वहां की शोचनीय स्थिति देख कर कश्यप ऋषि ने जलोद्भव का नाश करने की प्रार्थना की। विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा अन्य देवी देवताओं सहित इस कार्य के लिए कश्मीर की भूमि में पहुंचे। शिव ने नौबन्ध शिखर पर, हरि ने दक्षिण शिखर पर तथा ब्रह्मा ने उत्तर शिखर पर अपना डेरा डाल दिया। यह तीनों चोटियां महेश्वर शिखर, हरि शिखर तथा ब्रह्मा शिखर के नाम से प्रसिद्ध हैं। [4]नामों की यह शृङ्खला भी धार्मिक समन्वय की भावना

---

1. नीलमत— सर्वाः सरिद्वराः पुण्याः सर्वे प्रस्रवणास्तथा ।
इमे च राजेन्द्र तथा सर्वे पुण्याः शिलोच्चयाः ॥ १३५३ ॥

2. वही— कश्मीरामण्डलं पुण्यं सर्वंतीर्थमरिन्दमम् ।
तत्र नागह्रदाः पुण्यास्तत्र पुण्याः शिलोच्चयाः ॥ २४ ॥
तत्र नद्यस्तथा पुण्याः पुण्यानि च सरांस्यपि ।
देवालयाः महापुण्याः तेषां चैव तथाश्रमाः ॥ २५ ॥

3. वही— श्लोक ७६—१७४

4. वही— तानेताञ्छिखरान्पश्य ब्रह्मा विष्णु महेश्वरान् ।
नौबन्धशिखरो यस्तु स एत्र नृप शंकरः ॥ १७८ ॥
दक्षिणोऽस्य हरिः पार्श्वो वामो ब्रह्मा प्रकीर्तितः ।
एतान् हि दृष्ट्वा मुच्यन्ते ये हि पापकृतो नराः ॥ १७९ ॥

को प्रकट करती है । जलोद्भव सतीसर में छिपा हुआ था क्योंकि जल में उसे अवध्यता प्राप्त थी । विष्णु के आदेश से अनन्त ने अपने लाङ्गल (हल) से सरोवर को जलरहित कर दिया । जलोद्भव ने अपनी माया से चारों ओर अन्धकार की सृष्टि कर दी । तब शिव ने चन्द्, सूर्य दोनों को हाथों में पकड़ कर प्रकाश कर दिया । विष्णु का जलोद्भव दैत्य के साथ घोर युद्ध हुआ और अन्त में अपने चक्र से उन्होंने उसका सिर काट दिया ।

भगवान् विष्णु की विजय की स्मृति में उसी स्थल पर स्वयं भगवान् शिव ने आश्रम बनाया । शेष देवों ने भी उस के पास ही अपने अपने आश्रम बनाये । इस प्रकार नीलमतपुराण में नौबन्धशिखर का समीपवर्ती प्रदेश किसी एक विशेष देव का नहीं अपितु ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, सूर्य, चन्द्, ऋषि, महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक आदि सभी का निवासस्थान बताया गया है ।[5] चक्रलाभ की कथा[6] विशेष रूप से शिव और विष्णु का मित्रभाव प्रकट करती है । भगवान् विष्णु का चक्र जलोद्भव के रक्त से मत्त हो कर सूने प्रदेश में घूमता हुआ शंकर के हाथ में आ गया । भगवान् शंकर उसे ले कर विष्णु के पास जा पहुंचे । भगवान् विष्णु ने शिवजी से हंसते हुए कहा, "हे देव ! दैत्यों के संघ को विनष्ट करने वाला यह चक्र मुझे वापिस दे दीजिए" । हंसते हुए विष्णु को शिव ने परिहास में ही उत्तर दिया, "मैंने तो इसे स्वच्छन्द विचरता हुआ पाया है, किसी से नहीं लिया । बदले में कुछ मिलेगा तो चक्र दूंगा ।" चक्र के प्यारे विष्णु यह शर्त भी मान गये । चक्र लेकर विष्णु ने उसी स्थान पर अपनी तथा शिव-पार्वती की मूर्तियों का हंसती हुई मुद्रा में निर्माण करवाया ।

नीलमत में वैष्णव धर्म तथा शैव धर्म के इस समन्वय का प्रमाण विष्णु और शिव की पत्नियों के अद्भुत सम्मिलन से भी उपलब्ध होता है ।[7] कश्यप ऋषि की प्रार्थना पर शिव ने सती को कहा तो सती वितस्ता नदी का रूप धारण करके कश्मीर की जनता को पवित्र करने लगी । अकेले उससे यह कार्य सम्पन्न होना कठिन था इस लिए उसने ऋषि से निवेदन किया, "अत्यन्त पाप-युक्त लोगों को पवित्र करने का उत्साह मुझ में नहीं है । आप शार्ङ्गधर विष्णु की प्रिया लक्ष्मी को प्रेरित करें । वे तीनों लोकों को भी पवित्र करने में समर्थ हैं ।" ऋषि ने विष्णु के पास जा कर इस कार्य के लिए प्रार्थना की । फलतः पति के आदेश से लक्ष्मी विशोका नदी के रूप में कश्मीर भू पर बहने लगी । वितस्ता को सूचना मिल चुकी थी अतः वह धौम्य ऋषि के आश्रम के पास ठहर कर विशोका की प्रतीक्षा करने लगी । विशोका ने वहां पहुंचते ही ईर्ष्या भाव को त्याग

---

5. वही— श्लोक १८०—१८७
6. वही— श्लोक १८८—१९६
7. वही— श्लोक २३८—२८९

कर वितस्ता से आलिंगन कर लिया। चूंकि वितस्ता वहां पहले पहुंची थी इस लिए दोनों के सम्मिलित जल-प्रवाह का नाम वितस्ता ही रहा। लक्ष्मी कश्मीरा देवी पर क्रुद्ध थी। उस ने सती को सब सूचना पहले देकर लक्ष्मी को धोखे में रखा पर सती के प्रति उसे तनिक भी ईर्ष्या नहीं हुई। बड़ी उदारता से उस ने कहा, "सती के मिलने से मेरा अपना नाम लुप्त हो गया है, इस बात पर लज्जित होने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। जो मैं हूं वही सती भी है।"[8]

उत्तरायण वर्णन में मधुसूदन की मूर्ति को घी से स्नान कराने का विधान है। परन्तु साथ ही यह भी कहा है कि शिव का भक्त शिव की मूर्ति का ही स्नान करा दे। इस प्रकार नीलमत पुराण में शैव तथा वैष्णव धर्म परस्पर विरोधी मतों के रूप में नहीं, अपितु एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

नागपूजा कश्मीर के लोक-धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग रही है। भारतीय संस्कृति की यह प्रमुख विशेषता है कि इस में विभिन्न तत्वों का संग्रह ऐसे समन्वयात्मक रूप से हुआ है कि कई बार कौन सा विशेष तत्व किस विशेष जाति का है यह पहचानना ही कठिन हो जाता है। नीलमत पुराण में नाग-पूजा का प्रमुख भाग जिस में अनेक देवी देवताओं की पूजा तथा अनेक उत्सवों का वर्णन है, नीलमत द्वारा ही कहा गया है।[9] प्रथमहिमपातोत्सव में नील तथा स्थानीय नाग की पूजा का विधान है।[10] इरामञ्जरी पूजन के दिन सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित लोग इरा-उपवनों में जा कर अनेक देवी देवताओं की पूजा इरा पुष्पों से करते हैं। इन देवी देवताओं में नील नाग तथा स्थानीय नाग भी सम्मिलित हैं। नील नाग तो स्वयं कहते हैं, "[11]इरा नागों को प्रिय है, विशेषतः मुझे जो कोई इरावाट में मेरी पूजा इरापुष्पों से करता है उससे मेरी अत्यन्त तुष्टि होती है।" इन्द्रपक्ष की शुक्लपञ्चमी को भी नील नाग तथा स्थानीय नाग की पूजा का विधान है।[12] देव-गृहों की यात्रा

---

8. वही— यन्मे नाम हृतं सत्या न मे व्रीडात्र जायते।

9. वही— एवमस्तु द्विजश्रेष्ठ वसन्त्विह नराः सदा।
पालयन्तस्तु मद्वाक्यं केशवाद् यन्मया श्रुतम्॥ ३६५॥

10. वही— मम पूजा च कर्तव्या स्थान-नागस्य चाप्यथ॥ ४६२॥

11. वही— इरा नागेषु दयिता दयिता मे विशेषतः।
इरावाटे तु यः पूजां करोति मम काश्यप!
इरापुष्पैर्भृशं तेन तुष्टिर्मे प्रजायते॥

12. वही— श्लोक ७२६—३१

की विभिन्न तिथियों में [13]पञ्चमी, द्वादशी तथा पौर्णमासी नागों के तीर्थों की यात्रा के लिए गिनी गई हैं।

यह बात यहां ध्यान में रखने योग्य है कि नीलमत में नाग पूजा भी एक विशाल संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में उल्लिखित है। नागों का स्वामी वासुकि विष्णु का ही अंश कहा गया है[14] और नील नाग को वासुकि की तरह विष्णु का प्रिय बतलाया गया है।[15] जलोद्भव राक्षस के नाश करने में अनन्त नाग ही विशेष रूप से विष्णु की सहायता करता है।[16]

अन्य पुराणों से नीलमत पुराण की यह एक विशेषता है कि इस में नाग देव ही हिन्दु धर्म का अंग नहीं बने अपितु हिन्दु-धर्म के देव भी नागों के रूप में उपस्थित हुए हैं। रुद्र (९३६), हर (९०६) शम्भु (८८८), भव (९००), महादेव (९१३), कुमार (८६८), वासुदेव (८९०) जनार्दन (९३९), नारायण, अनिरुद्ध (८९०), प्रद्युम्न (९३९), गोपाल (९४४), चक्रधर (९००), शत्रुघ्न. राम, लक्ष्मण, (९१३), हनुमान्, अङ्गद (९०६), महेन्द्र, इन्द्र (९२७) जयन्त (८८७), अर्जुन (८८६), भीष्म (९२६), धृतराष्ट्र (९०३), युधिष्ठिर (९१३) सभी का उल्लेख नीलमत पुराण की नाग सूची में आया है।

बौद्ध धर्म के प्रति जैसा उदार भाव हमें नीलमत पुराण में दिखाई देता है, वैसा किसी भी अन्य पुराण में उपलब्ध नहीं होता। बौद्धमत के प्रसार के साथ हिन्दु धर्म ने बुद्ध जैसे प्रभावशाली धार्मिक नेता को विष्णु का अवतार मान लिया था। बहुत से पुराणों में बुद्ध को विष्णु के दश अवतारों में गिना गया है। इन में से कुछ पुराण तो विष्णु के अवतार के रूप में बुद्ध का नाम मात्र देकर ही या नमस्कार मात्र करके ही मौन हो जाते हैं। कुछ पुराण बुद्ध के विषय में ऐसी कथाएं कहते हैं जिन से प्रतीत होता है कि विष्णु ने बुद्ध का रूप असुरों को वेद मार्ग से विचलित करके उनका नाश करवाने को धारण किया था। इन पुराणों में बुद्ध सम्बन्धी कथाओं का उद्देश्य साधारण जनता के हृदय में उत्पन्न हुई शंकाओं का समाधान करना था। हिन्दु धर्म में यज्ञ के उच्च स्थान और बौद्धों के यज्ञ विरोधी सिद्धान्तों ने बुद्ध को यज्ञपुरुष विष्णु का अवतार मान लेने पर कुछ उलझन सी पैदा

---

13. वही— पञ्चमी द्वादशी चैव पौर्णमासी तथैव च।
सर्वेषामेव नागानां यात्राकर्मणि पूजिता ॥ ८४५ ॥
14. वही— ममांशः स तु नागेन्द्र नागानामीश्वरेश्वरः ॥ २२२ ॥
15. वही— तस्यातिदयितश्चासि यथा नागः स वासुकिः ॥ ३५५ ॥
16. वही— श्लोक १६५—१६६

कर दी थी। इसी उलझन को सुलझाने का प्रयास इन कथाओं में है। नीलमत पुराण के रचयिता के दृष्टिकोण की उदारता का मूल्यांकन करने के लिए कुछ अन्य पुराणों के बुद्ध सम्बन्धी उल्लेखों को परख लेना भी आवश्यक है।[17]

विष्णु पुराण के १७वें १८वें अध्यायों में मायामोह की कथा वर्णित है। दैत्यों तथा देवों के युद्ध में पराजित देवगण ने विष्णु से प्रार्थना की कि हमारे शत्रु असुर, वर्ण धर्म के पालक, तपोनिष्ठ तथा वेद मार्ग के अनुगामी होने के कारण हम से पराजित नहीं किए जा सकते। आप ही कोई उपाय बतायें जिससे हम उन्हें मार सकें। विष्णु ने अपने शरीर से मायामोह को उत्पन्न किया जिसने पहले तो मुण्डित केश दिगम्बर के रूप में असुरों को वेद मार्ग से विचलित करने का प्रयत्न किया, फिर रक्तवस्त्र धारण करके शेष असुरों को पशुहिंसा से हटा कर "यह जगत् विज्ञानमय है, निराधार है, भ्रमजन्य पदार्थों की प्रतीति पर स्थिर है, रागादि दोषों से दूषित है" इत्यादि बोध करवाया। असुरों द्वारा वेद-मार्ग छोड़ दिए जाने पर देवों ने उन्हें नष्ट कर दिया। इस पुराण में बौद्धमत के सिद्धान्तों का वर्णन करके उन्हें असुरों की पराजय का कारण बताया गया है। स्पष्ट है कि लेखक लोगों के हृदयों से बौद्ध धर्म के प्रभाव को क्षीण करना चाहता है।

अग्निपुराण के १६वें अध्याय में भी विष्णुपुराण की तरह ही एक कथा है पर, इस कथा की विशेषता यह है कि मायामोह को स्पष्ट रूप से शुद्धोदन-सुत बुद्ध कहा गया है तथा उस के अनुयायी असुर, जिन्होंने मोहित हो कर वेद धर्म को छोड़ दिया था बौद्ध नाम से पुकारे गए हैं।

भागवत पुराण में विष्णु के अवतारों का तीन स्थलों में वर्णन है और तीनों में ही

17. पद्मपुराण— भूमिखण्ड अध्याय १८, श्लोक ६६
विष्णुधर्मोत्तरपुराण— खण्ड ३, अध्याय ३५१, श्लोक ५४
भविष्यपुराण— श्लोक २३
अग्निपुराण— मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजिता वेदधर्मकम्।
(१६, ३) ते च बौद्धा बभूवुर्हि ... ...॥
भागवतपुराण— ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नामाञ्जनसुतः कीकटेषु भविष्यति॥ १. ३. २४.
देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानाम्।
पूर्भिमयेन विहिताभिरदृश्यतुर्भिः।
लोकान्घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं।
वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम्। २. ७. ३७–८
बुद्धस्तु पाषण्डगणप्रमादात् प्रपातु। ७. ८. १९

बुद्ध को सुर-द्विषों को मोह में डालने वाला तथा पाषण्ड-गणों को प्रमादी बनाने वाला बताया गया है। वेदमार्ग में निष्ठित असुरों ने जब लोगों को पीड़ित करना प्रारम्भ किया तो विष्णु ने बुद्ध के रूप में अति प्रलोभन-युक्त वेष धारण करके असुरों को बहुत से उपधर्मों का उपदेश दिया जिस से वे वेद मार्ग से च्युत हो गए।

मत्स्यपुराण में भी यही कहा है कि असुरों का नाश करके धर्म की व्यवस्था करने के लिए ही विष्णु ने बुद्धावतार धारण किया था।

वराहपुराण में भी बुद्ध को लोगों को मोह में डालने वाला बताया गया है।

कश्मीर का नीलमत पुराण बुद्ध अवतार के विषय में इन सब पुराणों से नितान्त भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। असुरों और देवताओं के संघर्ष का उल्लेख इस में नहीं है। नीलनाग ने कश्मीर की जनता को बहुत से धार्मिक उत्सव मनाने के लिए आदेश दिया है। उन उत्सवों में एक बुद्ध जन्मदिनोत्सव भी है जिस का वर्णन सात श्लोकों में मिलता है। यहां बुद्ध को असुरों का उपदेशक नहीं अपितु जगद्गुरु कहा गया है। यद्यपि अन्य पुराणों में कहीं कहीं बुद्ध की पूजा का विधान है परन्तु वहां बुद्ध के अनुयायियों को असुर ही माना गया है। इस के विपरीत नीलमत पुराण में

मत्स्यपुराण— ४७-२४७

वराहपुराण— रणवीर संस्कृत अनुसन्धान संस्थान, हस्तलिखित संख्या ३५३३
अध्याय ४८ श्लोक १६

18 नीलमत- विष्णुर्देवो जगन्नाथः प्राप्ते ब्रह्मन् कलौ युगे।
अष्टाविंशतितमे भावी बुद्धो नाम जगद्गुरुः ॥ ६४८ ॥
पुष्ययुक्ते निशानाथे वैशाखे मासि काश्यप।
तस्मात् कालादथारभ्य काले भाविन्यतः परम्॥ ६८५ ॥
शुक्ले संपूजनं तस्य यथा कार्यं तथा शृणु।
सर्वौषधैः सर्वरत्नैः सर्वगन्धैस्तथैव च ॥ ६८६ ॥
बुद्धार्चास्नापनं कार्यं शाक्योक्तैर्वचनैस्तथा।
सुधासिताश्च कर्तव्याः शाक्यावासाः प्रयत्नतः ॥ ६८७ ॥
क्वचिच्चित्रयुतः कार्याश्चैत्या देवगृहास्तथा।
उत्सवं च तथा कार्यं नटनर्तकसंकुलम् ॥ ६८८ ॥
शाक्यानां पूजनं कार्यं चीवराहारपुस्तकैः।
सर्वमेतद् भवेत् कार्यं यावत् प्राप्ता भवेन्मघा ॥ ६८६ ॥
दिनत्रयं च कर्तव्यं नैवेद्यं विधिवद् द्विज।
पुष्पवस्त्रादिपूजा च दानं दीनजनस्य च ॥ ६६० ॥

यह कहा गया है कि बुद्ध की मूर्ति की पूजा शाक्योक्त वचनों से ही की जानी चाहिए। बौद्धों के निवासस्थान में सफेदी कराने का, देवगृहों और चैत्यों में चित्र अंकित करने का तथा शाक्यों को वस्त्र भोजन और पुस्तकें देने का भी विधान है। नटों और नर्तकों के नाट्य नृत्य से युक्त इस उत्सव में तीन दिन तक नैवेद्य अर्पित करने का, पुष्पवस्त्रादि से पूजा करने का तथा दीनों को दान देने का विधान भी है।

ईसा की छटी-सातवीं शताब्दी में कश्मीर की जनता बुद्ध के जन्मदिवस को जिस उत्साह से मनाती थी उसका स्पष्ट विवरण हमें इस पुराण में मिलता है। हिन्दु धर्म के अनुयायियों का बौद्धविहारों तथा चैत्यों की सजावट में सक्रिय भाग लेना, बुद्ध की मूर्तियों की पूजा करना, बौद्ध भिक्षुओं को वस्त्र, भोजन तथा पुस्तकें देना और बुद्ध के जन्म-दिवस की प्रसन्नता में नृत्य अभिनय से युक्त उत्सव मनाना यह सब बातें कश्मीर में तत्कालीन धार्मिक समन्वय-भावना की परिचायक हैं।



कोई भी व्यक्ति, भारत के एक भाग को देख कर, सारे भारत की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। वर्तमान को देखने वाला कभी भी इसके भूत के विविध एवं विशाल दृश्यों की कल्पना नहीं कर सकता। क्योंकि इसकी जड़ें बहुत नीचे मानव के पुरातन इतिहास तक हैं। इसी लिए समय-समय पर अनेक बाधायें उपस्थित होने पर भी इसकी जड़ें, जिन्होंने हमारे अच्छे या बुरे भाग्य का निर्माण किया है, नहीं हिलीं। उस स्वर्णिम अतीत से, जो एक इतिहास है और इस वर्तमान से, जो एक भार बन गया है, नव-भारत का भविष्य धीरे-धीरे जन्म ले रहा है।

इन ऐतिहासिक धाराओं को यदि हम समझना चाहें तो हमें बौद्धिक-स्तर पर विचार करना होगा। भविष्य के उचित मार्ग-निर्देशन के लिए हम को भूत और वर्तमान की भावनाओं का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। मेरे विचार में कोई भी व्यक्ति भारत या उसकी जनता को तब तक नहीं समझ सकता जब तक उस ने इन दो महाकाव्यों (बाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस) का ज्ञान प्राप्त न किया हो।

—नेहरू

[श्री एन. चन्द्रशेखर अय्यर द्वारा लिखित 'बाल्मीकि रामायण' की भूमिका से]

मैथिलीशरण गुप्त

और

उन का साकेत

रमाकान्त भारद्वाज

भारत के इतिहास में सन् १९६४ एक दुर्भाग्यपूर्ण वर्ष के रूप में याद रहेगा। केवल इस लिये नहीं कि इस ने देश से जवाहर लाल नेहरू जैसे नर-रत्न को उठा लिया है बल्कि इस लिये भी कि इस ने हिन्दी-जगत् के उज्ज्वलतम नक्षत्र 'दद्दा' को भी हम से छीन लिया है। श्री रमाकान्त भारद्वाज का यह लेख मैथिली बाबू को शीराज़ा की ओर से श्रद्धांजलि के रूप में भेंट किया जा रहा है।



"हाय ! देवी उर्मिला, महाकाव्यरूपी सुमेरु के शिखर पर प्रातःकालीन नक्षत्र के समान, एक बार, बस तुम्हारा उदय ही देखने में आया। उस के पश्चात् अरुण के आलोक में तुम्हारे कभी दर्शन नहीं हुए ! कहां तुम्हारा उदयाचल और कहां तुम्हारा अस्ताचल, यह प्रश्न ही मानों सब लोग भूल गये।"

बहुत वर्ष पहले कवीन्द्र रवीन्द्र ने रामायण के लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के प्रति भारतीय काव्य-जगत् की दुःखद उपेक्षा को लेकर यह उद्गार प्रकट किये थे। उस पर इसके बाद बंगाली साहित्य में बहुत कुछ कहा गया।

इसी से प्रेरणा पाकर हिन्दी के महारथी आचार्य द्विवेदी जी ने भी एक निबन्ध लिखा—"कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता।"

यह सब उन दिनों हुआ जब कविवर मैथिलीशरण गुप्त अभी युवक थे और आचार्य द्विवेदी जी के सम्पर्क में आ चुके थे। 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' इन दो महनीय काव्यों की रचना के कारण हिन्दी जगत् में आपकी लेखनी काफी प्रतिष्ठा पा चुकी थी।

आदिकवि वाल्मीकि के बाद भारत में, थोड़े अपवादों को छोड़ कर, कवि-प्रतिभा की साधना का सर्वोच्च तथा सर्व-प्रिय लक्ष्य रामचरित रहा है। यह परिस्थिति देश की राष्ट्रीय परिस्थितियों के उद्दामउतार-चढ़ाव के बावजूद लगभग निकट भूतकाल तक, प्रायः अक्षुण्ण रही है। अस्तु युवक कवि गुप्त की प्रवृत्ति ने भी रामकथा की दिशा में झुकाव का स्पन्दन अनुभव किया। रामचरित के प्रति गुप्त जी का श्रद्धानत कवि पुकार उठा :

"राम ! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।"

उसे ऐसा लगा कि रामचरित की सुधासरिता में डुबकी लगाए बिना कवि-जीवन की साधना और प्रयास मानो अधूरे हैं। यद्यपि गुप्त जी निषाद के वाण द्वारा आहत किसी 'क्रौञ्चमिथुन' की अन्तर्वेदना से द्रवित हो कर कवि नहीं बने, तथापि कवित्व के नाते समाज के अनादृत एवं उपेक्षित वर्ग के प्रति उनके मन में जो तड़प, जो कसक उठी वही पहले उर्मिला और उसके बाद यशोधरा के आंसू बन कर बह निकली।

ऐसे वातावरण में गुप्त जी की दृष्टि को रवीन्द्र और द्विवेदी जी के पूर्वकथित निबन्धों ने आकृष्ट किया। गुप्त जी की तरुण हृदयतन्त्री में साहित्य-जगत् की इस मर्मवेधी उपेक्षा को देख कर जो कम्पन उठा वही एक तरह से 'साकेत' की रचना के लिए प्रेरणा का मूलस्रोत बन गया। मूल स्रोत इस लिये कि उन के लिये ये निवन्ध केवल संकेत मात्र ही थे। साकेत की प्रबन्धयोजना, अपनी मौलिकता तथा नवीनता और अछूतेपन के कारण ही साहित्य-जगत् में इतनी अपार ख्याति प्राप्त कर सकी है। गुप्त जी ने स्वयं रामचरित के अगाध भावरत्नाकर से प्रेरणा पाई हो अथवा कवीन्द्र और द्विवेदी जी के उद्‌गारों से प्रभावित हो कर उर्मिला की करुण कहानी को काव्य-रूप दिया हो, इस चर्चा को इतना कह कर ही समाप्त किया जा सकता है कि कवि ने एक अनकही बात कह कर साकेत के रूप में जो अनुपम उपहार साहित्य-जगत् को भेंटा है; वह अपने आप में इतना परिपूर्ण है कि उसके स्रोत की जिज्ञासा छोड़ कर हम उससे उपलब्ध माधुर्य के रसास्वादन से आनन्दित हों।

इस निराले काव्य के लिये गुप्त जी की रस-स्रोतस्विनी लेखनी उठी। इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा इन दो मनोरम छन्दों में रचना की प्रगति होने लगी। इस बीच में एक सुझाव के रूप में साकेत के स्थान पर 'उर्मिला काव्य' नाम रखने की बात भी

उठी । परन्तु कवि की आन्तरिक प्रवृत्ति ने इसे स्वीकार नहीं किया । और भी कई सुझाव उनके सामने आये, परन्तु वे कवि की मौलिक योजना को प्रभावित न कर सके ।

कवि उर्मिला को प्रधानता तो देना चाहता था, किन्तु काव्य की नायिका के रूप में नहीं वरन् रामचरितरूपी मुक्ताहार की मध्यमणि के रूप में उसे पिरो कर और यह मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की प्रभुता को अक्षुण्ण रख कर ही उनके लिए सम्भव था। 'उर्मिला-काव्य' तो केवल मात्र एक साधारण विरह-काव्य ही बन कर रह जाता ।

इसी अन्तराल में गुप्त जी भयानक रूप से बीमार पड़ गये । यहां तक कि अन्त समय निकट दिखाई पड़ने लगा । हृदयगति रुकने लगी । परिवार में निराशा के काले मेघ घिर आये । कवि की आन्तरिक चेतना यद्यपि स्थिर थी, तो भी बोलना कठिन था । इतने पर भी उनके मुख से अपने आत्मीय को सम्बोधन करके यह शब्द निकले—"सिया राम साकेत ··" अर्थात् सियारामशरण मेरे साकेत को मेरी मृत्यु के बाद पूरा कर देना परन्तु दैव की इच्छा कुछ और ही थी । धीरे-धीरे गुप्त जी की दशा ने पलटा खाया और आप नीरोग हो गये । परन्तु आपके अन्दर साकेत के लिये कितनी उत्कट ममता रही उसका एक समुज्ज्वल प्रमाण इस घटना से संसार ने जाना और इस प्रकार साकेत कादम्बरी और पृथ्वीराज-रासो की तरह अपने मूल उद्भावक की अभीष्ट सृजन दिशा से वञ्चित होने से बच गया ।

इस काव्य की रचना के लिये श्री गुप्त जी के मन में इतना गम्भीर आकर्षण होने का बीज रामायण ही नहीं, रामचरित पर लिखी गई असंख्य अन्य रचनाओं में भी दीख पड़ने वाली एक अन्यायपूर्ण और निर्मम उपेक्षा है ।

राम निसर्ग-संयमी और त्यागपरायण स्वभाव रखते थे । उनके लिए पिता के आदेश-पालन में वनवास का स्वीकार या राज्यसुख का बलिदान कोई बड़ी अपूर्व वीरता नहीं हो सकती । एक पतिव्रता आर्य पत्नी के रूप में, पति के संकटकाल में उसके सुख-दुःख का स्वेच्छा से समभागी बनना सीता के लिये भी कोई लोकोत्तर महत्व की बात नहीं होनी चाहिये । विशेषतया जब कि वन में पति की सहचारिता में नए सुन्दर प्रदेश देखने और अस्थायी वनवास की समाप्ति पर भारत-सम्राज्ञी के सिंहासन पर पुनः आरूढ होने की मधुर आशा उसके साथ सम्मिलित थी । भाई के प्रति छोटे भाई का सहज-सौहार्द, लक्ष्मण के लिये, राम के साथ वनवास की विविध यातनाओं को स्वेच्छा से अंगीकार करने में पर्याप्त प्रेरक बन गया था । राम के प्रति उसके अनुजों के प्रेम की गम्भीरता का जो स्तर भरत ने, वनयात्रा के बाद अयोध्या में लौटने पर प्रस्तुत किया, उसे देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि वनयात्रा के समय भरत अयोध्या में रहते तो वे भी लक्ष्मण की भान्ति वनगमन में भाई के अनुगामी बन जाते ।

इस प्रकार राम वनवास के कारण कठोरतम आत्मत्याग और दुस्सह आन्तरिक यंत्रणा का यदि कोई भाजन हुआ तो वह बेचारी निरीह नवोढा मुग्धा उर्मिला ही थी। इस तथ्य को भले ही वाल्मीकि, भास, कालिदास तथा भवभूति ने नहीं पहचान पाया हो, और ये सभी महाकवि छोटे-मोटे परिवर्तन-परिवर्धन के साथ लग-भग उसी बनी बनाई पुरानी लकीर पर चलते रहे हों, परन्तु गुप्त जी ने न केवल स्वयं इसको स्वीकार किया, अपितु रामायण के सभी मुख्य पात्रों द्वारा इसकी अभिव्यक्ति भी उन्होंने करवाई है। यहां तक कि स्वयं महाराजा दशरथ भी उर्मिला की मार्मिक पीड़ा से विचलित हो पुकार उठते हैं :

"उर्मिला कहां है? हाय वधू—
वह रघुकुल की असहाय वधू"

असहाय वधू क्यों ? राजभवन के असीम वैभव के साथ-साथ सास-सुसर और देवरों की वात्सल्यपूर्ण छाया के रहते भी वह कैसे असहाय हो सकती थी, शायद इस तथ्य को प्राचीन कवि युक्तियुक्त नहीं समझते थे। और फिर दशरथ ही क्यों, इस समूचे उत्पात की सूत्रधार, स्वयं कैकेयी भी उसकी वेदना को प्रमुख मानने से नहीं हिचकी। करुणा और ग्लानिमिश्रित वाणी में वह पुकार उठी :—

"आ, मेरी सब से अधिक दुःखिनी, आ जा
पिस मुझ से चन्दनलता, मुझी पर छा जा।"

और कवि ने 'गायी प्रभु ने वधू उर्मिला की गुणगीता' यह कह कर स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र की अपूर्णता में पूर्णता ला दी है। वे भी उर्मिला की असाधारण त्यागपरायणता पर श्रद्धा की सुमनाञ्जलि अर्पित करते हुए कह उठते हैं :-

"तूने तो सहधर्मचारिणी से भी ऊपर
धर्म स्थापन किया, भाग्यशालिनि, इस भू पर।"

यहां तक कि सीता को भी राज्यसुख का त्याग और सतीत्व का गर्व उर्मिला की मूकवेदना के आगे फीका दीख पड़ने लगा। उर्मिला को धड़ाम गिरते देख कर उसके अनुपम त्याग से प्रभावित हो कर वह कह उठी :

"आज भाग्य है जो मेरा
वह भी हुआ न हा ! तेरा।"

लक्ष्मण भी एक बार इस सती के ऊर्जस्वल तेजःपुञ्ज के सामने चकाचौंध में आ गए। चित्रकूट पर सहसा उर्मिला का एक बार सामना हो जाने पर जब वे कृशकाया पत्नी को देखकर स्तब्ध रह जाते हैं तो विरह-विह्वला उर्मिला का व्यथित यौवन मानों चीख पड़ता है :

"मेरे उपवन के हरिण, आज वन चारी
मैं बांध न लूंगी तुझे, तजो भय भारी।"

लक्ष्मण भी उसके तेज से पराभूत से हो कर उसकी यंत्रणा को दुलराते हुए कहते हैं :

"वन में तनिक तपस्या करके,
बनने दो मुझ को निज योग्य।"

कवि ने युग-युगान्तर के लिए भ्रातृत्व के अनन्य आदर्श लक्ष्मण के द्वारा भी, वन-यात्रा का लक्ष्य केवल भ्रातृप्रेम को न कहला कर सती उर्मिला के योग्य बनने के लिए तपस्या को स्वीकारा है! इस प्रकार कवि ने अपने रामचरित का प्रत्येक पृष्ठ सती उर्मिला के आंसुओं से जैसे भिगो दिया है।

लेकिन दूसरों की सहानुभूति-भरे बोल उर्मिला के गहरे घाव को कहां तक भर सकते थे ? वह सती तो मानसमन्दिर में पति की प्रतिमा थाप कर अपने विरहानल में स्वयं आरती बनकर जलती रही। चौदह वर्षों की लम्बी विरह निशायें दृग्जल-धारा के सहारे तिल-तिल काट कर, भले ही उर्मिला को, युगों के पश्चात्, गुप्त जी के द्वारा सतीत्व के उच्चपीठ कर आरूढ होना नसीब हुआ, किन्तु असह्य विरहानल की ज्वाला की लपटों ने उसका जो अमूल्य रत्न छीन लिया था, वह उसे कहां से पाती ?

लक्ष्मण लौट आए। मिलन वेला निकट आ गई। परन्तु चौदह वर्ष पहले के अभिनव यौवन का उल्लास कहां से लाए बेचारी उर्मिला ? मिलन सुख भी उसके लिए मानो विषाक्त हो गया। वह तड़प उठी :—

"और वह यौवन उन्माद कहां से लाऊंगी मैं?
वह खोया धन आज कहां से पाऊंगी मैं?"

गुप्त जी ने केवल उपेक्षिता उर्मिला का उद्धार किया हो, ऐसा नहीं। उन्होंने तो कैकेयी जैसे घृणा प्राप्त और लोक-विद्वेष से अभिभूत पात्रों को भी सहानुभूति के योग्य बना डाला।

केवल पात्र ही क्यों ? आप तो रामचरित के कई अन्य उपेक्षित स्थलों का उद्धार कर उन्हें नए रंग में चित्रित करना भी नहीं भूले।

नव-युग की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर कवि ने रामचरित के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना तथा राष्ट्रीय नैतिकता को जागृत करने के लिए भी अवसर खोज निकाला है। सीता के अपहरण को भरत केवल रघुकुल-वधू के अपहरण मात्र के रूप में नहीं देखते। यह दुःखद समाचार पाते ही वे गरज उठते हैं :

"भारतलक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धुपार वह बिलख रही है व्याकुल मन में"

देशभक्ति के आवेश में राष्ट्र को नैतिकता का आंचल नहीं छोड़ देना चाहिए। कवि ने इस तथ्य को भी इसी प्रसंग में चित्रित किया है। क्रोध के आवेश में शत्रुघ्न की दर्पोक्ति है :

अब क्या है? बस वीर बाण से छूटो! छूटो!
सोने की उस शत्रुपुरी लंका को लूटो।"

परन्तु उर्मिला द्वारा भारतीय नैतिकता के आदर्श की गुप्त जी यों रक्षा करवाते हैं :

गरज उठी वह नहीं! नहीं! पापी का सोना
यहां न लाना, भले ही सिन्धु में वहीं डुबोना।"

इस प्रकार गुप्त जी ने साकेत के माध्यम से न केवल रामचरित में अखरने वाले कई अभावों की सुन्दर अभिपूर्ति की है, वरन् अपनी मौलिक कल्पनाओं द्वारा इसे और भी निखार दिया है। इस में आप ने न केवल प्राचीन आदर्शों की रक्षा की है, बल्कि उन्हें अभिनव राष्ट्रीय और मानवता के आदर्शों के नवीन मूल्यों और मान्यताओं के साथ गूंथ कर राष्ट्र और मानवता का महान् उपकार भी किया है।



मैथिलीशरण गुप्त को 'राष्ट्रकवि' का सम्मानपूर्ण विशेषण महात्मा गांधी से प्राप्त हुआ था। दशकों तक वह राष्ट्रमानस की भावनाओं को अभिव्यक्ति देते रहे। उन के जीवन काल में ही हिन्दी कविता जैसे छलांगें मार कर बहुत आगे निकल गई थी। पर आज हिन्दी काव्य जो कुछ भी है, उसे मैथिलीशरण गुप्त ने रूप दिया है; उसे मैथिलीशरण गुप्त ने संवारा है, उसे मैथिलीशरण गुप्त ने अमर स्पन्दन दिया है। अपने जीवन-काल में ही उन्होंने वर्तमान हिन्दी की काव्य-ज्योति को इतना प्रज्ज्वलित कर दिया था कि वह कभी बुझ नहीं सकेगी।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार



एक कविता

प्रात की चेतना

चांदनी अपना आंचल
पसारे चली
बस्तियाँ और वन
एकमन हो गये
लालिमा की डगर पर
फिसलती हुई
कालिमा के चरण
थरथराते रहे
रात की बात भी
ऊंघती ऊंघती
बेद की झुरमुटी डाल पर
सो गई
सहमे सहमे सितारे
चुनरिया लिये
आंख मलते हुए
झेंपते रह गये
ख़ामुशी नीड़ के राज़ की
वेदना
झींगुरी साज़ पर
गुनगुनाती रही
रात के वक्ष में
प्रात की चेतना
करवटें ले के भी
कसमसाती रही
कसमसाती रही !



पृथ्वीनाथ पुष्प

एक गीत

तुम चिनार की छाया

तुम चिनार की छाया ।
तुम चिनार की छाया ।।

तुम गुलाब की सुन्दर कलिका,
मनमोहक सौरभ वाली ।

उषा-काल की मधु-बयार तुम,
सांध्य-गगन की हो लाली ।

दूर-दूर तक फैले केसर-कुसमों की तुम माया ।

तुम चिनार की छाया ।
तुम चिनार की छाया ।।

शालिमार की पनचादर की,
अमिय - सनी तुम वाणी ।

कविता बुलबुल पोशनूल की,
डल का उर्मिल पानी ।

या सूफी-संगीत, गया जो हो सन्तूर पै गाया ।

तुम चिनार की छाया ।
तुम चिनार की छाया ।।

मेरा मरु - जीवन सरसा दो,
महका दो इसका कण-कण ।

मेरा मौन मुखर हो जाये,
गूंजे दिशि-दिशि में गायन ।

संग तुम्हारा पा, उछाह से गहूँ पंथ मन-भाया ।

तुम चिनार की छाया ।
तुम चिनार की छाया ।।

●

पृथ्वीनाथ 'मधुप'

कश्मीरी भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के लिए शैवदर्शन तथा सूफीमत का मुख्य रूप से अध्ययन करना अनिवार्य है। कृष्णभक्त कवियों पर शैवदर्शन की अपेक्षा श्रीमद्भागवत का गहरा प्रभाव पड़ा है......।

उन्नीसवीं शताब्दी के कश्मीरी कवि

परमानन्द
और
उनकी हिन्दी कविता

●

-- प्रो॰ चमनलाल सपरू

कश्मीरी साहित्य में भक्ति साहित्य भी काफी मात्रा में उपलब्ध है। वास्तव में यदि देखा जाए तो कश्मीरी साहित्य ही लल्लेश्वरी के रहस्यपूर्ण भक्ति-काव्य से आरम्भ होता है। लल्लेश्वरी कश्मीरी काव्य की निर्गुण शाखा की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। इसके अतिरिक्त रूप भवानी तथा मिर्ज़ा काक का नाम भी इस शाखा में गिना जा सकता है। रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि प्रकाश भट्ट हैं, यद्यपि इस शाखा में शंकर त्रिछल, विष्ण कौल, व्यसू तथा नीलकंठ शर्मा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। प्रेम मार्गी (सूफ़ी) शाखा के अन्तर्गत शेख नूरुद्दीन, हबीब उल्लाह नौशहरवी, शाह कलंदर, शमस फ़कीर तथा वहाबखार का नाम प्रमुख है। कृष्ण भक्ति शाखा में महाकवि परमानंद का नाम सर्वोपरि है। इस शाखा के अन्तर्गत कृष्ण राज़दान का नाम भी उल्लेखनीय है।

कश्मीरी भक्ति काव्य की पृष्ठ भूमि का अध्ययन करने के लिए शैवदर्शन तथा सूफ़ीमत का मुख्य रूप से अध्ययन करना अनिवार्य है। कृष्ण भक्त कवियों पर शैवदर्शन की अपेक्षा श्रीमद्भागवत का गहरा प्रभाव पड़ा है। भक्त कवियों ने जहां कश्मीरी साहित्य की अभिवृद्धि में अपूर्व यगोदान दिया वहां इनका हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य और एक मिली-जुली संस्कृति को जन्म देने में भी बड़ा भारी योगदान रहा है। इन संत और सूफ़ी कवियों की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान में कोई अंतर नहीं। आध्यात्मिक क्षेत्र में यह बाहरी भेद-भाव नहीं होते हैं। तभी तो लल्लेश्वरी कहती है :

शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्योंद त मुसलमान।
त्रुकै छुख त पान परज़ान,
सुई छै दयस सॉत्य ज़ानी ज़ान।

(शिव ही सर्वत्र व्याप्त है। हिन्दु और मुस्लिम में भेद न मान। ज्ञानी हो तो अपने आपको पहचानो। वही परमात्मा के साथ वास्तविक पहचान है।)

शेख नूर उद्दीन, जिसे प्राय: नुन्द ऋषि के नाम से जाना जाता है, कहते हैं :

पो'ज़ यो'द बोज़ख पाँच् न्वम्रख,
नत माज़य न्वम्रख रछि, न माज़।
शिवस सा'त्यन यलि म्युल करख,
स्यद्धि च्यू ऋषि मालि त्यलि न्यमाज़॥

(यदि तुम तत्त्व [सत्य] को जानना चाहते हो, तो पाँच इंद्रियों को वश में रखो। अपने शरीर को झुकाने से कुछ न होगा। यदि तुम शिव से एक हो जाओगे, हे ऋषि! तभी तुम्हारी निमाज़ सफल होगी।)

इस "श्रुख" में 'शिव' तथा 'निमाज़' के अद्‌भुत सामंजस्य को देखा जा सकता है।

जीवन परिचय

इस प्रकार की स्वस्थ आध्यात्मिक एवं साहित्यिक परम्पराओं से युक्त कश्मीर मंडल में महाकवि परमानंद का जन्म हुआ। उनका जन्म १७९१ ई० में अनंतनाग ज़िला के सीर गांव में हुआ। यह गांव प्रसिद्ध तीर्थ मटन (मार्त्तण्ड) से थोड़ी दूरी पर स्थित है। इस समय कश्मीर पर पठानों का शासन था। इनके पिता का नाम कृष्ण पंडित था और माता का नाम सरस्वती। आरम्भ में फारसी की शिक्षा प्राप्त

की। उस समय फारसी भाषा ही शिक्षा का माध्यम थी । इनका बचपन का नाम नंदराम था और 'ग़रीब' उपनाम से फारसी में भी कविता किया करते थे। पं० नारायण जू मूरचगर (मूर्त्तिकार) द्वारा निर्मित इनका एक प्राचीन चित्र इन के जन्म स्थान पर उपलब्ध है। सीर गांव में सरस्वती परमानंद की उपास्य देवी थीं। बाद में अपने जन्मस्थान के ही पास पहाड़ी पर स्थित 'भर्गशिखा' के मंदिर में दुर्गा की उपासना किया करते थे। इस स्थान के अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य ने इनके भक्ति काव्य में भी अद्भुत-काव्य सौंदर्य का समावेश किया है। इनके पिता पटवारी थे और उनके देहांत पर यह भी पटवारी बने। इनका विवाह मालद्यद नामी एक कन्या के साथ काफी अल्पवय में हुआ था। मालद्यद उग्र स्वभाव की थी। परमानंद विनोदी स्वभाव के थे। उस समय पटवारियों को बड़ी नीच दृष्टि से देखा जाता था। परमानंद का एक अधिकारी मिसरा राधूमल था। इसके कटु-व्यवहार से तंग आकर इन्होंने अपने एक पद में उस पर व्यंग कसा था।

परमानंद पर समसामयिक साधु-महात्माओं का काफी प्रभाव रहा। इन में हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। परमहंस स्वामी आत्मानंद जी के साथ इन्होंने काफी समय व्यतीत किया और उनके साथ वेदान्त का खूब अध्ययन किया। एक सिख साधु के सत्संग से गुरु गृन्थ साहिब का अध्ययन किया। गृन्थ साहिब की इन पंक्तियों :

"इक लख पूत सवा लख नाती,
ते रावण घर दिवा न बाती।"

को इस प्रकार अपनी एक हिन्दी रचना में इन्होंने प्रस्तुत किया है।

"इक लख पूता सवा लख नाते।
जिस रावण घर दिवा न बाते॥
क्या फल पाया कंसासुर ने..... ॥"

मुस्लमान फकीरों में वाहब साहब के साथ इनका सम्पर्क रहा। परमानंद ने इनकी इच्छानुसार फारसी शब्दों से मिश्रित एक कश्मीरी कविता लिखी। यहां यह बात स्मरणीय है कि पंडित परमानन्द कश्मीरी कविताओं में संस्कृत मिश्रित शब्दावली का प्रयोग किया करते थे। प्रसिद्ध कवि महमूद गामी से भी इनकी भेंट बताई जाती है। इसके अतिरिक्त इनका एक पड़ोसी पं० टिकाराम था; वह साधु था और दार्शनिक, धार्मिक तथा नैतिक विषयों पर फारसी में कविता किया करता था। उस से भी परमानन्द प्रभावित थे।

प्रारम्भ में उन्होंने देवी की प्रशंसा में काव्य रचना की। जैसा कि पहले बताया गया है मट्टन में 'भर्ग शिखा' भगवती की स्थापना है। कवि की उपास्य देवी होने के कारण इन्होंने उक्त देवी की प्रशंसा में स्तुति की है। इसकी प्रारम्भिक पंक्ति यूं है :

श्री भर्ग रूपी राज्ञा भवानी ।
लीन कर च़ दीन अस्य छि चॉनिय़ ।।

कई अन्य भक्ति गीत इन्होंने सीर गांव में सरस्वती देवी के पवित्र कुण्ड पर साधना करते हुए रचे हैं ।

महाकवि परमानन्द ने अपनी साधना से योग की उच्च अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । इन तथ्यों का संकेत उनकी कतिपय रचनाओं में मिलता है । अमरनाथ यात्रा से सम्बन्धित उनकी कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

मास्टर ज़िन्दा कौल जी ने इनकी कविताओं को निम्नलिखित क्रम से विभाजित किया है :

(१) देवी भवानी, गणेश, शिव, विष्णु आदि की प्रशंसा में गाए गए विनय के पद । इन पदों में कवि ने अपने किए पापों का उल्लेख करते हुए क्षमा-प्रार्थना की है ।

(२) दूसरे भाग में इनकी अमरनाथ जी की यात्रा जैसी कविताएं आती हैं । इन में योग सम्बन्धी बातों पर काफी प्रकाश डाला गया है ।

(३) तीसरे भाग के अन्तर्गत उनकी तीन लम्बी कविताएं आती हैं । (क) सुदामा चरित्र (ख) राधा स्वयंवर (ग) शिव लग्न । इन कविताओं का केन्द्रीय भाव क्रमशः सुदामा और श्रीकृष्ण का अनन्य प्रेम, राधा तथा अन्य गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम तथा शिव और उमा का मिलन है । यह तीनों कविताएं परमात्मा का जीवात्मा के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाती हैं और इसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम और आकर्षण ।

आगे चलकर 'मास्टर जी' ने परमानंद की फुटकर कविताओं के दो भेद किए हैं :—(१) आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले जिज्ञासुओं के निमित्त कवितायें । इनमें ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनाओं का उल्लेख किया गया है । (२) अपने अनुभव की परिपक्वता के फलस्वरूप लिखी गई वेदान्त पर आधारित रहस्यपूर्ण कविताएं ।

परमानंद की काव्य-शैली की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है । उनके काव्य में यत्र-तत्र अनुप्रास एवं यमक की अनुपम छटा प्राप्त होती है । एक उदाहरण प्रस्तुत है :

पोशतस दीवकियि लूख आ'स्य यिवान ।
पोश तस पूज़ि ऑस्य लागानो ।
पोशतस ज़ि कृष्ण उपकारक सतान ।।

प्रथम पंक्ति में "पोशतस" का अर्थ बधाई देना होता है। दूसरी पंक्ति में "पोश तस' का अर्थ उसे फूल अर्पित करते थे, होगा। तीसरी पंक्ति में "पोशतस" का अर्थ चिरंजीव होता है।

परमानंद के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। किन्तु दोनों अल्पवय में मर गए। बड़ा विवाहित भी था। इस भौतिक सुख से वंचित होने के दुःख के अनुभव का वर्णन उन्होंने एक स्थान पर किया है :

कुन त कीवल न सार सूरम'च् आश।
निः पुतुर त नित्रन न रूदमुत-गाश॥

(मैं अकेला हूं, मेरी आशा विलीन हो गई है। निःसंतान हूं और आंखों में प्रकाश नहीं रहा है।)

महाकवि परमानंद के कई योग्य शिष्य हुए हैं। उनमें नागाम के पं० लक्ष्मण जू प्रमुख हैं। यह भी कवि थे और इन्होंने 'नलदमयन्ती' नामक काव्य की कश्मीरी में रचना की है।

इनके गांव का मुकदम सालेह गनाई यद्यपि परमानंद का अधिकारी था, फिर भी उनका काफी आदर करता था। आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी पहुंचा हुआ जान कर वह परमानंद की सेवा भी करता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमानंद एक उच्च-कोटि के योगी होने के साथ-साथ महाकवि भी थे। इनका देहान्त १८८० ई० में हुआ।

महाकवि परमानंद पहले कश्मीरी कवि हैं जिन्होंने हिन्दी में भी कविता की। परमानंद के समय यहां की राजनैतिक परिस्थिति में परिवर्तन हुआ था। पठानों का शासन समाप्त हुआ था। सिख शासन के २७ वर्षों ने और फिर धर्म-प्रिय डोगरा प्रशासकों ने यहां के त्रस्त हिन्दू समाज के लिए धार्मिक जीवन बिताने के लिए एक स्वतंत्र एवं अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया था। भारत के अन्य भागों से काफी संख्या में धर्म-प्रिय पर्यटक, साधु आदि कश्मीर के प्रमुख तीर्थों और विशेषकर अमरनाथ जी की यात्रा करने के लिए आते थे। मटन ग्राम अमरनाथ जी के मार्ग में ही पड़ता है और साथ ही यह एक अखिल भारतीय महत्व का तीर्थ है। यहां पर गर्मियों के मौसम में काफी देर तक साधुओं का निवास रहता है। परमानंद जी का इन साधु-संन्यासियों के साथ संपर्क होने लगा। वेदान्त पर चर्चा, श्रीमद्भागवत का पारायण और संकीर्त्तण आदि के कार्य-क्रम प्रायः आयोजित होते थे। इन संकीर्त्तण आयोजनों में महाकवि परमानंद हिन्दी के प्रमुख भक्त कवियों की कृतियों से परिचित हुए। अतः हम देखते हैं कि परमानंद पर जो व्यापक प्रभाव भक्ति का पड़ा है वह इन्हीं हिन्दी कवियों की कृतियों के कारण है। उन दिनों मटन ग्राम में स्वामी आत्मानंद जी नामक एक संन्यासी रहा करते थे।

ये बड़े ही विद्वान और योगी थे। इनके संपर्क में रह कर परमानंद ने वेदान्त दर्शन का गहन अध्ययन करने के साथ संस्कृत भाषा का भी अध्ययन किया। यही कारण है कि उनकी कविता में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। कहीं-कहीं पर तत्सम शब्द भी काफ़ी संख्या में मिलते हैं।

गोकल हृदय म्योन तति चोन गूर्यवान।
चित विमर्श दीप्तिमान भगवानो॥

इन में गोकुल, हृदय, चित, विमर्श, दीप्तिमान तथा भगवान शब्द संस्कृत के हैं। उनकी बहुप्रशंसित कविता की प्रथम पंक्ति यहां उद्धृत की जाती है।

कर्म भूमिकायि दिज़ि धर्मुक बल।
संतोषि ब्यालि भवि आनंद फल॥

इसमें कर्मभूमि, धर्म, बल, संतोष, आनंद-फल, संस्कृत के शब्द हैं। उपर्युक्त कविता के शब्दों को भली प्रकार न समझने के कारण परमानंद ने ख्रिव निवासी "वहाब खार" (जो एक दरवेश थे) को कृषि सम्बन्धी आध्यात्मिक अर्थ से पूर्ण एक कविता सुनाई थी। जिसमें क़रारदाद, वादा, ज्यादा जैसे फारसी के शब्द प्रयुक्त किए गए हैं।

परमानंद की हिन्दी कविता पर पंजाबी भाषा का भी प्रभाव पड़ा है। इसका कारण सिख शासक का प्रभाव तथा मटन में सिखों के गुरुद्वारे में ग्रंथियों के साथ परमानंद का सम्पर्क हो सकता है। एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है:

मन कंसा तन मथुरा होंदा।
कृष्ण आतमा हृदि गोकुल रहंदा;
नारद विवेक सच सनियाँ देंदा॥

इसमें 'होंदा', 'रहंदा' और 'देंदा' पंजाबी के शब्द हैं।

परमानंद की लग-भग एक दर्जन हिन्दी कवितायें उपलब्ध हैं। इनका महत्व संख्या की दृष्टि से नहीं, अपितु हिन्दी भाषा और साहित्य के देश-व्यापी स्वरूप का आकलन करने के लिए उनकी तत्कालीन उपयोगिता और प्रभाव को समझने की दृष्टि से आंका जाना चाहिए। कश्मीर के इस महाकवि की "हिन्दी कविताओं" की समीक्षा काव्य-शास्त्र की कसौटी पर न कस कर इसके राष्ट्र-भाषा के महत्व और उसकी विस्तार सीमाओं के मूल्यांकन तथा विभिन्न प्रदेशों के पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से करनी होगी।

श्री कृष्ण का जन्म हुआ है और भगवान् शंकर ने उनका दर्शन करने का विचार किया है और योगी का रूप धारण करके भिक्षा प्राप्ति का स्वांग रच कर गोकुल में पधारे हैं। इस दृश्य का अनुपम चित्रण परमानंद ने इस प्रकार किया है:

भिख्या[1] मांगन सांग[2] बनायो
आयो सदा शिव गोकल में ।
दर्शन करने को ध्यान धरायो
आयो सदा शिव गोकल में ॥

नंगे सिर और नंगे पैरे
नन्दकेश्वर का सवारी था ।
अंग में भस्मा भभूत चढ़ायो
आयो सदा शिव गोकल में ॥

हाथ में त्रिशूला कान में मुन्द्रा
सुन्दर मुख को करा कराल ।
घंटा शब्द और शंख बजायो
आयो सदा शिव गोकल में ॥

गल में नागेन्द्र हारा पल में
जल में जैसे उठी तरंग ।
गोकल में भूकंप मचायो
आयो सदा शिव गोकल में ॥

यशोदा ने देखा एक भैरव-स्वरूप भिक्षा मांगने द्वार पर आया है । उसने श्री कृष्ण को छिपा लिया । इस बात को अंतर्यामी ने समझ लिया :

अंतर्यामी स्वामी देखा,
अन्तर बाहर पूर्ण मय ।
बालकृष्ण का मुख उसने छिपायो;
आयो सदा शिव गोकल में ॥

यशोदा श्री कृष्ण को घर में छिपा कर अन्न की मुट्ठी भर कर 'जोगेश्वर' के पास जाती है :

"लेकर दाना मुड़ आयो जसोदा,
वसुदेव का वासुदेव न साथ ।
सामने होके हाथ जुड़ायो ;
आयो सदा शिव गोकल में ॥"

---

1 भिक्षा ।
2 स्वांग ।

यशोदा को क्या मालूम उसके घर में किस विभूति ने जन्म लिया है। 'जोगेश्वर' श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

यह बालक हे जसोदा माई;
त्रिजगतांदा स्वामी है।
जिसको बतायो उसको बतायो;
आयो सदा शिव गोकल में॥

ना वेद आख[1] सके ना भाषा,
व्यास पराशर शुक देव।
महिमा जिसकी हम को दिखायो;
आयो सदा शिव गोकल में॥

गोपियों के विरह वर्णन और श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट-भक्ति का परमानंद ने सूक्ष्म वर्णन किया है। इन कविताओं में एक विशेष बात उल्लेखनीय है कि इन में वेदान्त की अद्वैत भावना को भी समझाया गया है :

ना तुम देखो कृष्णा श्यामा,
पतिया हमारा (म्हारा) लूको[2],
बाज़ीगर ने बाज़ीगरी की;
जिगर हमारा पारा लूको॥
... ...
आखूँगा हम ना कह रखूँगा,
ना कहूँ तो मर जाऊँगा।
रिस के नसना, उसका हंसना;
चोरों का अलंकारा लूको॥
... ...
नेत्र प्रकाशक सूरज साड़ा,
हमको न आवे देखन में भी।
ऐसा साड़ा देखो–लूको;
जैसा जग में पारा लूको॥
... ...

एक और लीला[3] (कविता) गोपियों द्वारा यूं कही गई है :

---

1 कह सके।

2 लोगो।

3 कश्मीरी भाषा में प्रेम-भक्ति सम्बन्धी कविता को 'लीला' कहते हैं।

सदके उसको बुलाओ सदके सदके ।
क्या आना तदके मर जाना जदके ॥
... ...

चारों वेदों का अर्थ यही है ।
जप तप यम और बरत यही है ;
छोड़ो कपाल अपना सद्गुरू पदके ॥
... ...

तुम होवो राजा तुमको आ जा मीटे ।
कम करने से कम काजा मीटे ;
क्यों घट में रहना घट वदके ॥
... ...

इनकी एक और कविता में श्रीकृष्ण के अवतार लेने का कारण स्पष्ट करते हुए वृषभान के द्वारा पूछे गए प्रश्न का नारद द्वारा इस प्रकार उत्तर दिया गया है :

जग में कृष्ण किस कारण आयो रे ॥
० ० ० ० ०

मग्न रहा बैठा परमात्मा ।
बीच अपने कुछ भी नाहि जाना ;
अपने आपको देखन आयो रे ॥
० ० ० ० ०

चित्त–आभास का बाधा होके ।
कृष्ण आप ही आप राधा होके ;
फिर गई माया, ना मोहन आयो रे ॥
० ० ० ० ०

'परमानन्द' विशयानन्द होके ।
मस्त रहे हस–हसके रोके ;
आप अलेप आप लेपन आयो रे ॥
० ० ० ० ०

'परमानन्द' परम आनन्द होके ।
अनाहद वाद योग नाद बन्ध होके ॥
नित मुक्त होके नित बन्ध होके ।
जग में कृष्ण उस कारण आयो रे ॥
० ० ० ० ०

रहस्यवादी भक्त कवियों की भांति परमानंद ने कई प्रतीकों से वेदान्त तथा अन्य आध्यात्मिक उपदेश दिए हैं। वास्तव में प्राय: अपनी कविताओं में इन्हीं गूढ बातों का समावेश करके अपने पाठकों को मोह-निद्रा और अज्ञान से जागने का आदेश दिया है :

श्याम मुख सन्मुख दिखावे ।
मेरा मन कैसा सुख पावे ॥
इन्द्रिय–नगर का राजा इंद्र होवे ।
मोह लंका का रामचन्द्र होवे ॥

कुंभ कर्ण करने का जगावे ।
देह द्वारका मन है कृष्ण जी ॥
भोग इच्छा अठ पटरानी ।
वख-वख लख घर बिछावें ॥

जमने का जमुना पार तरे ।
सतसंग गंग अश्नान करे ;
न आवन तीर्थ तन न्हावे ॥
० ० ० ० ०

रहने क्या ना रहने का वेला ।
है क्या यह एक दो दिन का मेला ;
आयो अकेला फिर जायो अकेला ॥

श्रीकृष्ण की भक्ति में लिखी हुई उन की बहुप्रशंसित कविता के कुछ अंश यहां उद्धृत किए जाते हैं :

रूप तुम्हारा अछा पछाना ।
तुम बिन कुछ नहीं काम ॥
गोकल में श्रीकृष्ण हुआ हो ।
अयुध्या में श्री राम ॥

वैरी तेरे कोई न होवे ।
प्यारे तेरे और ॥
हिंसा कंसा मारा तारा ।
प्रेम ने सुदाम ॥
० ० ० ० ०

वृन्दावन में रास रचायो ।
नाम पयो गोपाल ॥
भोगी हो सब भोगां भोगे ।
योगी हो निष्काम ॥
० ० ० ० ०

बाप हमारा कृष्ण हुआ हो ।
पिता तुम्हारा नन्द ॥
आपस में क्या पहुँचोंगा हम ।
आप से दर दाम ॥

अंतिम चरण में अद्वैत का एक सुन्दर उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है । परमानंद कहता है "आप मेरे पिता हैं (परमानंद के पिता का नाम कृष्ण था) और आप का पिता नंद है (कवि का वास्तविक नाम नन्दराम था) अब आप ही बताइए हम दोनों का आपसी संबन्ध क्या है ? इस का आप ही हिसाब लगाइए।"

परमानंद ने कर्मवाद पर बल देते हुए काफी रचनायें की हैं । उन के एक हिन्दी पद में कर्म संबन्धी विचार उल्लेखनीय हैं :—

मात-पिता और सुत बंध-भ्राता ।
जान लियो तुम दाता हो ॥
हाथ अपना है जी जगन्नाथा ।
कृत-कृत्य प्रति पालन होयो ॥

तुम समझते हो कि माता-पिता, बच्चे अथवा मित्र तथा सम्बन्धी तुम्हारी सहायता करेंगे । यह भ्रम है तुम्हारा हाथ जगन्नाथ है (रक्षक है) तुम ने जो करना है सो करके स्वयं अपने पालक बनो । इस पद में हिन्दी के मुहावरे का यथावत् प्रयोग भी दृष्टव्य है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व के इस कश्मीरी-भाषी कवि ने अपनी मातृ-भाषा में रचित उत्कृष्ट कविताओं के अतिरिक्त कैसी मधुर हिन्दी में (जिसे परमानंद स्वयं 'भाखा' कहते थे) कविता की है ।

●

हम पहले भी थे; और आगे भी होंगे । अतीत से भविष्य तक हम ने सब कुछ देखा है । हम शिव हैं, हमारे लिए जन्म-मरण का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा । जैसे सूर्य के आने जाने का क्रम कभी टूटता नहीं । —लल्लेश्वरी

ई० ७०० से १३०० तक कश्मीर की वास्तुकला का उन्नत युग था। इस युग की तथा इस के पहले प्रारम्भिक युग की वास्तुकलाओं में परस्पर आकाश पाताल का अन्तर है। इस युग की कला बहुत उन्नत तथा हर प्रकार से प्रारम्भिक युग की कला से विशिष्ट है। यह कला कश्मीर में एक दम अपने प्रौढ रूप में प्रकट होती है।...इस कला के उदाहरण सुघटित पत्थर की शिलाओं के बने हैं और कुशल शिल्पियों की कला-कृतियां हैं। इसे समृद्ध बनाने का श्रेय अधिकतर कश्मीर के प्रतापी शासक ललितादित्य को है।

● केदारनाथ शास्त्री

कश्मीर के प्राचीन स्मारक

कश्मीर के प्राचीन स्मारक काल भेद से तीन भागों में विभक्त किए जा सकते हैं :

(१) वास्तुकला का सबसे प्राचीन रूप जो कश्मीर में पहले-पहल दृष्टिगोचर होता है; अविकसित है। इस की तिथि ई० २०० से शुरू होकर चार-पांच सौ वर्ष तक चलती है। इन स्मारकों की अब केवल बुनियादें ही शेष हैं। ऊपर का भाग नष्ट हो चुका है।

(२) कश्मीर की वास्तुकला का दूसरा अथवा मध्यकालीन रूप बहुत उन्नत था। यह आठवीं सदी के आरम्भ से २३वीं सदी ईसवी के अंत तक प्रचलित रहा।

(३) इसका तीसरा रूप वह था जो ई० १४वीं सदी के आरम्भ से १८वीं सदी के मध्य तक प्रचलित रहा। वास्तुकला का यह रूप इसलाम के प्रसार के साथ कश्मीर में आया।

कश्मीर की वास्तुकला का पूर्व-निर्दिष्ट पहला रूप (१) जो चार पांच सौ वर्ष तक (ई० २००-७००) व्याप्त रहा, केवल बौद्ध धर्म का ही प्रतीक है।

बौद्ध काल : कश्मीर में बौद्धकाल की वास्तुकला के स्मारकों के जो अंश मिले हैं; अब उनकी केवल बुनियादें ही शेष हैं। परन्तु इन अवशिष्ट अंशों से इतना पता लग जाता है कि आरम्भ में कश्मीर की वास्तुकला का क्या रूप था। इस काल की कला के स्मारक पुरातत्व-विभाग की खुदाई से प्रकाश में आए हैं। इनमें कुछ तो हार्वन नामक स्थान से और कुछ बारामूला के पास उस्कर (प्राचीन 'हुविष्कपुर') स्थान से प्राप्त हुए हैं। हार्वन का स्थान श्रीनगर के पास डल के किनारे एक ऊंची ढालुवां अधित्यका पर स्थित है। इसकी पृष्ठ भूमि में हिमाच्छन्न पर्वतों की शृंखला का अपूर्व दृश्य है। ईसवी सन् की प्रारम्भिक सदियों में यहां एक समृद्ध बौद्ध बस्ती थी, जिसमें इसके केंद्ररूप बौद्ध-स्तूप, संघाराम और चैत्य-मंदिर समाविष्ट थे। स्तूप का शरीर तो मेधियों (मंज़िलों) में बना था जहां पहुंचने के लिए पश्चिम की ओर सीढ़ियां थीं। यह स्तूप गांधार-शैली के स्तूपों के ढंग पर बना था, क्योंकि उन दिनों गान्धार देश के साथ कश्मीर का विशेष सम्बन्ध था। प्रतीत होता है कि आरम्भ में स्तूप का छत्र उत्तरोत्तर उठते हुए १३ अंगों का बना था। सम्भवतः इस स्तूप के हर माथे के सामने अशोक स्तम्भों की शैली का एक एक स्तम्भ भी गड़ा था। चैत्य-मंदिर के जो अवशेष मिले उनसे पता चलता है कि चैत्य का पृष्ठ-भाग चापाकार था। इसी भांति के एक चैत्य के अवशेष तक्षशिला के प्राचीन खंडहर सिरकप में भी पाए गए थे। ये धार्मिक वास्तुखंड बौद्धधर्म की उस क्रांति के परिचायक हैं जो इस युग में पश्चिमोत्तरी भारत तथा उससे भी परे गान्धार आदि पड़ोसी देशों में प्रसार पा रही थी।

इन बौद्ध स्मारकों की रचना का ढंग बहुत रोचक है। इस समय दीवारें गोल पत्थरों और कीच से बनाई जाती थीं। गीली मिट्टी के स्तर में गोल पत्थरों की तहें बिठा कर दीवार चिनी जाती थी। ई० २०० के समय दीवार इस प्रकार बनती थी। ई० ३०० के लग-भग ऐसी दीवारों में कहीं कहीं पत्थर की शिलायें लगाई जाती थीं। अंत में ई० ५०० के लग-भग अनघड़े बेजोड़ पत्थरों की कतारों के बीच की खाली जगह को पत्थरों की कातरों से भर दिया जाता था। ऐसी ऊबड़-खाबड़ बनी दीवारों के माथों को सुन्दर बनाने के लिए इन पर पक्की मिट्टी की अलंकृत टाइलों की जड़ाई की जाती थी। इन सजावटी टाइलों पर नाना-प्रकार के चित्र बनाए जाते थे। इन पर जो मनुष्यों की आकृतियां ढली हैं वे बहुत विचित्र हैं। मनुष्यों की आकृतियों में भारत तथा मध्य-एशिया के वासी मनुष्यों की मुख मुद्राओं की झलक है। इन मनुष्यों की वेश-भूषा में उनके अपने अपने देश की स्पष्ट छाप मिलती है। हार्वन से पक्की मिट्टी की जो सजावटी टाइलें मिलीं वे १८X१२ इंच नाप की थीं। विविध विदेशी लोगों की मुख मुद्राओं वाले चित्रों का कश्मीर में मिलना बतलाता है कि ई० पांचवीं-छटी सदियों के लग-भग कश्मीर भिन्न-भिन्न देशों की संस्कृतियों का संगम-स्थान था।

कश्मीर की वास्तुकला का दूसरा रूप (७००-१३०० ई०)

ई० ७०० से १३०० तक कश्मीर की वास्तुकला का उन्नत युग था। इस युग की तथा इस के पहले प्रारम्भिक युग की वास्तुकलाओं में परस्पर आकाश-पाताल का अन्तर है। इस युग की कला बहुत उन्नत तथा हर प्रकार से प्रारम्भिक युग की कला से विशिष्ट है। यह कला कश्मीर में एकदम अपने प्रौढ रूप में प्रकट होती है। क्योंकि इसके क्रमिक-विकास के कोई उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं हुए। इस प्रौढ रूप के सामने प्रारम्भिक काल की वास्तुकला, जिस का ऊपर वर्णन किया गया है, बच्चों का खेल था। इस वास्तुकला के उदाहरण सुघटित पत्थर की शिलाओं के बने हैं और कुशल शिल्पियों की कलाकृतियां हैं। इसे समृद्ध बनाने का श्रेय अधिकतर कश्मीर के प्रतापी शासक ललितादित्य (७२४-७६०) को है।

यहां ललितादित्य के काल की मंदिर-निर्माण कला का विशेष रूप से उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि इस काल के कश्मीर के मंदिरों पर 'ग्रीको-रोमन' वास्तुकला का प्रभाव पड़ा। वे कहते हैं कि इन मंदिरों के खंभे और उन का पंक्तिबद्ध विन्यास पार्थेनान तथा अन्य यूनानी मंदिरों की स्तम्भ-पंक्तियों का स्मरण कराते हैं। उन के मन में यूनानी वास्तुकला की ये विशिष्टताएं कश्मीर में गान्धार वास्तुशैली से ली गईं। उन का तर्क है कि कश्मीर के मंदिरों के स्तम्भ-शीर्षक रोमन काल के डारिक शैली के शीर्षकों (Doric Capitals) के समान हैं। तथा पत्थरों की शिलाओं की चिनाई में चूने तथा लोहे की कीलों का प्रयोग भी इसी स्रोत की ओर निर्देश करता है।

इस मध्यकालीन युग में पहले पहल जो वास्तु बने वे बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखते थे। इस समय के प्रतीक दो खंडहर हैं– एक परिहास पुर और दूसरी पुराणाधिष्ठान (पांड्रेथन)। परिहास श्रीनगर से १४ मील उत्तर पश्चिम की ओर है और पुराणाधिष्ठान श्रीनगर के पास एक स्थान है, जहां अब पांड्रेथन नाम गांव बसा है। परिहास पुर के बौद्ध स्मारकों में तीन मुख्य हैं—बौद्ध स्तूप, संघाराम और चैत्य। इन से पता चलता है कि वास्तुकला के इस रूप की क्या विलक्षणताएं थीं। इन में केन्द्रीय वास्तु स्तूप था जिसके सम्बंध में किम्वदन्ती है कि इसे ललितादित्य के मंत्री चंकुण ने बनवाया था। स्तूप भूविन्यास में १२८ फुट लंबी भुजा का वर्ग है, जिस की हर एक भुजा में ऊपर जाने के लिये सीढ़ियों की पांति थी। स्तूप दो-मंजिला था और इस के पार्श्व मुख्य दिशाओं की ओर बने थे। संघाराम पूर्वोक्त स्तूप के साथ ही बना था। इस के आंगन के चारों ओर १७५ फुट का चौकोन कोट था जिस के साथ-साथ अंदर की ओर २८ कोठरियां (प्रत्येक १६ फुट वर्गात्मक) थीं। संघाराम में प्रवेश के लिये पूर्व की दिशा में सीढ़ियां थीं। तीसरा बौद्धस्मारक, अर्थात् चैत्य, २३५ फुट लंबी भुजा के विशाल चौपहल आंगन के बीच बना था। इस के चारों ओर

कोट था जिस में प्रवेश करने के लिये द्वार पूर्व की दिशा में था। यह चैत्य आकार में भारत के बौद्धचैत्यों से भिन्न था। सम्भवत: कश्मीर से बौद्धों की यह स्वतंत्र कृति थी। एक महाकाय पत्थर की शिला जो चैत्य के गर्भगृह की अधार-शिला का काम दे रही थी १६ फुट लम्बी, १४ फुट चौड़ी और साढ़े ५ फुट मोटी थी। इस का आनुमानिक भार ६४ टन के लगभग होगा। पूर्वोक्त वास्तुओं में प्रयुक्त पत्थर की शिलाएं कुशल शिल्पियों के द्वारा घड़ी गई थीं और चूने के प्रयोग से इन की चिनाई की गई थी। यह बात स्मरणीय है कि भारत में इमारतों की चिनाई में चूने का प्रयोग ई० तेहरवी-सदी में दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दू धर्म के मंदिरों का निर्माण प्राय: पांच सौ वर्षों तक होता रहा। ये सब वास्तु इस समय नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। परन्तु इतने नहीं जितने कि बौद्ध धार्मिक वास्तु। बनावट में कश्मीर का हिन्दू मंदिर भारत के हिन्दू-मंदिर से भिन्न था। कश्मीर के हिन्दू-मंदिर में गर्भगृह के सामने मंडप या अर्ध-मंडप नहीं होता था। इस में केवल प्रांगण के मध्य में देवालय ही होता था। प्रांगण की सीमाओं के चारों ओर कोठरियां और उन के आगे खंभों पर बरामदे होते थे। मंदिर की बनावट सम्भवत: गान्धार के बौद्ध स्तूपों के आकार के समान थी। इस समय के कश्मीर के मंदिर की तीन विशेषतायें विशेष रूप से वर्णनीय हैं।

(१) चौपहल गावदुम छत्त (*Pyramidal Roof*) जो सम्भवत: लकड़ी के छत्त की नकल है। ऐसा छत्त पहले लकड़ी के फट्टों के उत्तरोत्तर आरोप से बनाया जाता था।

(२) झरींदार खम्भा जो रोमन-काल के 'डारिक' खम्भों से समानता रखता है। कश्मीर के मंदिरों के खम्भों की यष्टि एकाश्म है परन्तु 'डारिक' खम्भों की यष्टि एकाश्म नहीं थी।

कश्मीर के कई मंदिर जलाशयों के मध्य में बने हैं। एक ऐसा मंदिर लुडोव स्थान पर और दूसरा पांड्रेंथन के मुकाम पर है। जलाशय के मध्य में मंदिर का निर्माण करना सम्भवत: नाग पूजा का प्रतीक थां।

कश्मीर के समकालीन मंदिर की एक और विलक्षणता इसका छत्त था। लुडाव स्थान में रुद्रेश का प्राचीन मंदिर है। इसके छत्त पर वृत्तार्ध के आकार का गुम्बद (अंड) है जो घुड़िया शैली से एक दूसरी पर रखी हुई शिलाओं की रचना है। घुड़िया शैली के बने गुम्बद कश्मीर के अन्य मंदिरों में भी पाए गए हैं। कश्मीर के अन्य कई हिन्दू मंदिरों के छत्त कड़ियों और शिला-पट्टों के योग से बनाये गये थे।

ललितादित्य और अवन्ति वर्मन् राजाओं का शासन-काल कश्मीर की वास्तुकला का स्वर्णयुग था। ललितादित्य ने आठवीं सदी में मंदिर निर्माण कला का सूत्रपात किया। श्रीनगर से १६ मील दक्षिणपूर्व लुडाव के स्थान पर जो रुद्रेश-मंदिर है उसकी वास्तुकला अभी अविकसित है और गान्धर की वास्तुकला से प्रभावित दिखाई देती है। मंदिर-वास्तुकला के विकास की दूसरी दशा हरिपर्वत पर बने शंकराचार्य के मंदिर में झलकती हैं। मंदिर की दीवारों में बाहर की ओर जो त्रिभुजाकार उभार हैं वे तिपत्ती-नुमा कोष्ठों का पूर्वरूप हैं जो मार्तण्ड के मंदिर में अपने विकसित रूप में प्रकाश में आए।

मार्तण्ड मन्दिर : कश्मीर के हिन्दू मंदिर का पूर्णांग विकसित रूप मार्तण्ड के मंदिर में दृष्टिगोचर होता है। बाद में यह मंदिर इस शैली के भावी हिन्दू मंदिरों की वास्तुकला के लिए एक आदर्श बन गया। इस मंदिर के भग्नावशेष अनन्तनाग से पांच मील की दूरी पर विद्यमान हैं। मंदिर खुले प्रांगण के मध्य में खड़ा है। प्रांगण के चारों ओर कोठरियों की पंक्तियां थीं। आंगन में प्रवेश करने के लिए एक भव्य द्वार था। मध्यवर्ती मंदिर का सब से अधिक प्रभावशाली अंग विशाल तिपत्ती-नुमा कोष्ठ हैं जो त्रिभुजाकार तोरण से वेष्टित हैं। ऐसा एक एक कोष्ठ मंदिर के हर पार्श्व के मध्य में बना था। केंद्रीय मंदिर का गर्भगृह एक ऊंचे पीठ पर स्थित है और इसका छत चौपहल गावदुम के आकार का था।

मंदिर की इमारत भू-विन्यास में चौकोन है जिसकी लंबाई ६२ फुट और चौड़ाई ३५ फुट है। सामने की ड्योढ़ी के विशाल पक्षों से मंदिर की चौड़ाई ५६ फुट तक बढ़ी हुई दीखती है। अपनी सकलांग दशा में मंदिर की ऊंचाई सम्भवतः ७० फुट के लग-भग होगी। प्रांङ्गण लंबाई में २२० फुट और चौड़ाई में १४२ फुट था। इसके चारों ओर पंक्तिबद्ध खम्भे संख्या में ८४ हैं। हर एक खम्भे की ऊंचाई साढ़े नौ फुट और एक दूसरे के बीच का अंतर सवा छः फुट है। आठवीं सदी में जब यह मंदिर अपनी पूर्णांग दशा में था तो यह वास्तुकला का एक अनमोल रत्न रहा होगा। वितस्ता की रम्य अधित्यका पर प्रतिष्ठित तथा आत्यन्तिक हिमाटोप से आच्छादित दिव्य हिमालय के आंचल में विराजमान यह विशाल मार्तण्ड-मंदिर अवश्य ही अपने समय में देव-दुर्लभ छटा रखता था। सर यंग हस्बैंड ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "मेरे विचार में संसार में कोई भी ऐसा वास्तु नहीं होगा जो अपनी दिव्य परिस्थिति की विशिष्टता में मार्तण्ड मंदिर से तुलना कर सके।" इसमें संदेह नहीं कि मार्तण्ड के मंदिर में मनुष्य के हाथ की कृत्रिम कला तथा प्राकृतिक सौंदर्य का जो मधुर मिश्रण हुआ है उसका दूसरा उदाहरण संसार में शायद ढूंढने से भी न मिले।

ललितादित्य से प्राय: एक शताब्दी अनन्तर वास्तुकला का बड़ा पोषक तथा संरक्षक एक दूसरा राजा हुआ। इसका नाम था अवन्तिवर्मन् (ई० ८५५-८८३)। इसने अवन्तिपुर नामक नयी राजधानी की नींव डाली और इस स्थान पर बहुत शोभाशाली इमारतें बनवाईं। इनमें से इस समय केवल दो वास्तुओं के ही अवशेष मिलते हैं। इनमें एक अवन्तेश्वर शिव मंदिर और दूसरा अवन्तिस्वामिन् विष्णु-मंदिर था। शिव मंदिर एक भव्य इमारत थी। इसका प्राङ्गण २१८ फुट लम्बा, और २०० फुट चौड़ा था। आंगन के मध्य में स्थित मंदिर ५७ फुट भुजा का वर्गाकार वास्तु था। मंदिर के पीठ के कोनों पर चार छोटे मंदिर बने थे, जिससे हम इस मुख्य मंदिर को 'पंचायतन' शैली का मंदिर कह सकते हैं। अवन्ति स्वामिन् का मंदिर मार्तण्ड-मंदिर का ही छोटा रूप था। इसका आंगन १७४ फुट लम्बा और १४८ फुट चौड़ा तथा केंद्रीय मंदिर ३३ फुट भुजा का वर्ग था। मंदिर पर पहुंचने के लिए सामने माथे और पश्चिम की ओर सीढ़ियां थीं। यह मंदिर भी पंचायतन शैली का था। सामने वाली सीढ़ियों के पास एक छोटा जलकुण्ड और कीर्ति स्तम्भ भी था। आंगन के चारों ओर ६४ कोठरियों की पंक्ति और कोठरियों के आगे ७० खम्भों पर बरामदा था। पश्चिमी दीवार में बना प्रवेश द्वार बहुत शोभाशाली था। इसके दोनों ओर दीवार के साथ साथ कोठरियों की पंक्ति थी और दीवारों पर उकेरी की मूर्त्तियों की सुघड़ सजावट थी।

ललितादित्य और अवन्तिवर्मन् राजाओं के अनन्तर कश्मीर की मंदिर-निर्माण कला में अवनति ही होती गयी। अवन्तिवर्मन् के काल के और मंदिर प्राय: कश्मीर की घाटी के बाहर ही पाए जाते हैं। इनमें एक मंदिर बुनेर के स्थान पर और दूसरा ऊड़ी के स्थान पर है।

अवन्तिवर्मन् के बाद उसका बेटा शंकरवर्मन् राजा बना (ई० ८८३-९०२)। उसने पाटन को राजधानी बनाया। यह स्थान श्रीनगर से १७ मील उत्तर-पश्चिम में है। यहां दो मंदिरों के अवशेष हैं, एक शङ्कर-गौरीधर जिसे शङ्करवर्मन् ने बनवाया और दूसरा उसकी रानी सुगन्धा द्वारा बनवाया हुआ। दोनों इस समय नष्ट हो चुके हैं। इस काल के कुछ मंदिर जेहलम और सिंध नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश में विद्यमान हैं। इनमें अम्ब, कटास, मलोट, बिलोट आदि स्थानों में बने मंदिरों का उल्लेख पर्याप्त है।

कश्मीर की मुस्लिम वास्तुकला : कश्मीर में बौद्ध तथा हिन्दू वास्तुओं के जो अवशेष पाए गए उनसे पता चलता है कि ये वास्तु पत्थर के बने थे। परन्तु मुस्लिम वास्तुकला के उदाहरण प्राय: लकड़ी के थे। केवल मुगल काल में जो शाही इमारतें बनीं, वे पत्थर की थीं। इस से यह नहीं समझना चाहिए कि लकड़ी की इमारतें

केवल मुस्लिम काल में ही अस्तित्व में आईं। बौद्ध तथा हिन्दू कालों में लकड़ी की इमारतें प्राय: बनाई जाती थीं, परन्तु विनाश्य द्रव्य की होने के कारण वे सब सड़-गल गईं और उनका नाम-मात्र भी शेष नहीं बचा। मुस्लिम कालीन लकड़ी की प्रसिद्ध इमारतों में या तो मसजिदें हैं या मकबरे। मकबरों को ज़ियारत के नाम से भी पुकारते हैं।

श्रीनगर में शाह हमदान की मसजिद मुस्लिम काल की दारुमय वास्तुकला का एक अद्‌भुत नमूना है। यह मसजिद जेहलम नदी के दाएं किनारे पर है। अपनी रम्य परिस्थिति और उत्तम वास्तुकला के कारण यह इमारत बहुत मनोरम है। भू-विन्यास में यह ७० फुट भुजा का वर्ग है। दूसरी मंजिल के छज्जे के किनारे तक इसकी ऊंचाई ५० फुट है। छज्जे के ऊपर चौपहल गावदुम छत है जिसके चारों ओर अज़ान देने के लिए बारादरी है। इससे ऊपर मसजिद का कलश शिखर सहित तीर की तरह सीधा आकाश को बेधता है। भूतल से कलश की चोटी तक मसजिद की ऊंचाई १२५ फुट है। चौपहल गावदुम छत उत्तरोत्तर आरोपित तीन आछदों का बना है। मसजिद की केवल पहली मंजिल ही वास्तु कला की दृष्टि से प्रशंसनीय है। ऊपर की मंज़िल बिलकुल सादा और केवल ऊंचाई को बढ़ाने के लिए ही बनाई गयी थी। अंदर से मसजिद ६३×४३ फुट नाप का चतुर्भुज है।

परन्तु कश्मीर की दारुमय वास्तुकला का सर्वोत्तम उदाहरण श्रीनगर की जामा मसजिद है। इसे ई० १४०० के लग-भग कश्मीर के सुलतान सिकन्दर बुतशिकन ने बनवाया था। उसके बेटे ज़ैन-उल-आबदीन ने इस में बहुत सम्वर्धन किया। यह मसजिद अपने जीवन में तीन बार अग्नि कांड का शिकार बनी। परन्तु हर अग्नि कांड के बाद इसका पुनर्निर्माण होता रहा। इसका अंतिम उद्धार औरंगजेब ने कराया था।

यह मसजिद २८५ फुट भुजा के वर्गाकार सहन के मध्य में बनी है। इसके चारों ओर ३० फुट ऊंचा ईंटों का बना कोट है। कोट की उत्तरी, दक्षिणी और पूर्वी दीवारों में उभारदार प्रवेश द्वार थे। मुख्य प्रवेश द्वार दक्षिणी दीवार में है। इस मसजिद का सौंदर्य इस बात में है कि इसके अंदर लकड़ी के खम्भों की अनेक पंक्तियों पर आधारित चंक्रमण (*aisles*) हैं। तमाम इमारत के चारों ओर ऊंचे खम्भों की कतारें हैं। तीन ओर चार कतारें और चौथी ओर तीन कतारें गहरे चंक्रमण हैं। हर एक खम्भा देवदार के एक ही तने से तैयार किया गया था। खम्भों की ऊंचाई २५ फुट से ५० फुट तक है। खम्भों की कुल संख्या ३७८ है।

कश्मीर में मुग़ल काल की वास्तुकला के तीन सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। प्रथम हरिपर्वत का किला, दूसरा 'पत्थर मसजिद' तीसरा अखुन मुल्ला शाह की मसजिद।

ये तीनों इमारतें भूरे रंग के पत्थर की बनी हैं जो कश्मीर की पहाड़ियों में बहुत पाया जाता है। जब मुग़ल सम्राट अकबर ने हरिपर्वत किला बनवाना शुरू किया तो उसे संगतराशी के २०० माहिर हिन्दुस्तान से मंगवाना पड़े थे। इसका उल्लेख अकबर के एक शिलालेख में मिलता है। पत्थर मसजिद नूरजहां ने ई० १६२३ में बनवाई थी और पखुन शाह मसजिद १६४९ में तामीर की गयी थी। इनके अतिरिक्त कुछ और मुगलकाल की इमारतें कश्मीर में हैं। इन में एक डल के सामने पहाड़ी पर बना 'परी महल' है और दूसरी शालामार बाग में स्याह पत्थर की बनी बारादरी।



संस्कृति की वाणी गंगा

आज के भारत की संस्कृति की उपमा एक शतदल कमल से दी जा सकती है। हिमालय से कन्या कुमारी तक के विस्तीर्ण मंच पर जो बोलियां प्रचलित हैं, वे उसकी विभिन्न पंखुड़ियां हैं। इन पंखुड़ियों का जीवन और अस्तित्व जहां कमल के कारण है, वहां कमल का श्री–सौरभमय व्यक्तित्व भी इन पंखुड़ियों के ही कारण है। इस संस्कृति-सरोज की एक भी पंखुड़ी किसी भी कारण से उपेक्षित नहीं की जा सकती; क्योंकि इस से तो फिर यह मूल पुष्प ही अंगहीन हो जायेगा।

मैं चाहता हूं कि इस महादेश की समस्त प्रांतीय बोलियां अपने अपने घर की सम्राज्ञी बन कर रहें–अपने अपने चिन्तन-क्षेत्र की स्रोतस्विनी बन कर बहें और अन्ततः राष्ट्र-भाषा हिन्दी–हमारी संस्कृति की वाणी गंगा–में अपने को लीन कर एक अविभाज्य संस्कृति के विकास में योग दें।

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर



दो कविताएं

—सुभाष भारद्वाज

नींद !

आ रही है नींद
पलकें मुंद रहीं चुपचाप
अपने आप
तन्द्रा का नशा
आवृत्त मेरी चेतना को कर रहा है।
नींद यह बेवक्त की
मैं चाहता यद्यपि नहीं
बरबस
मुझे यह थपथपाती जा रही है।
ठीक भी है,
नींद से लड़ना मुनासिब भी नहीं,
कठिन भी है।
हां, अगर मैं कभी
कल, परसों, अतरसों जग गया तो
बांट दूंगा उस समूचे जागरण को
इन सभी जागे हुओं में
और इस तरह
और भी कुछ तेज कर दूंगा
इन जागे हुओं के जागरण को।
हां अगर मैं जग गया तो
यदि कभी मैं जग गया तो।
और ले भी सभी लेंगे
सभी हंस हंस
उस मधुर मेरे नवीले जागरण को।
क्योंकि,
मिल जाते हैं उस क्षण यार भी
जब गांठ में हो माल
इस लिये
अब फिलहाल
सोने दो मुझे,
आ रही है नींद,
पलकें मुंद रहीं चुपचाप,
अपने आप,
तन्द्रा का नशा,
आवृत्त
मेरी चेतना को कर रहा है।

●

रेत का सागर

रेत का सागर
छोटे छोटे पांव
न ठौर न ठांव
मन्जिल है
नहीं भी
न अन्धेरा न उजेरा
न सवेरा न रात
संझा प्रभात
कुछ भी नहीं
अकेला मैं—सिरफ मैं
और सब ओर
वही बदसूरत 'नहीं'
'है'–वह मीठा–'है'
अदृश्य अज्ञात
मात सिरफ मात
कदम कदम पर मात ही मात
क्या अब भी है पाप
तुम्हारी किताब में
आत्मघात ?

●

......वह एक ऐसा आदमी था जो अपने पूरे दिल व दिमाग से हिन्दुस्तान से और हिन्दुस्तान-वासियों से मुहब्बत करता था, और हिन्दुस्तानी भी उसकी खामियों को भुला कर उस से बेहद, अनहद मुहब्बत करते थे।



नेहरू : कुछ पहलू

● प्रो० जे० एल० कौल

३० जनवरी १९४८ के उस दुर्भाग्यपूर्ण दिवस पर, जब गान्धी जी की हत्या की गई थी, जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "ज्योति बुझ गई और चारों ओर अंधकार छा गया," श्रीमती सरोजिनी नायडू ने, बिरला हाऊस के उस कमरे में प्रवेश किया जहां शोकातुर व्यक्ति अनाथ हुए से शोक-विह्वल थे, और कहा—"आप गान्धी जी के लिए किस प्रकार की मृत्यु चुनते ? क्या आपकी इच्छा थी कि वे विस्तर में किसी लम्बी बीमारी का शिकार होकर प्राण देते ? उन्होंने गौरवपूर्ण जीवन व्यतीत किया है और एक गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त की है।" स्वयं पंडित जी ने उस दिन कहा था, "इसमें शोक मनाने की क्या बात है ? मानव-इतिहास में बहुत कम लोगों को, अपने जीवन में इतनी कामनाएं पूरी होते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

ये बातें आज हमारे लिए बड़ी अर्थपूर्ण हैं; क्योंकि यह बात मानने के बाद, कि मौत अटल है इस वेदनापूर्ण घड़ी में हमें आभारी रहना चाहिए कि हमारा प्राचीन और महान् देश, विदेशी सामाज्यवादी शक्तियों के सम्मुख मजबूर रहने के बाद, उस बेसुध स्वप्न से जाग उठा है और उसने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के अतिरिक्त संसार में अपना उचित स्थान बनाना आरम्भ कर दिया है—स्वतन्त्र और गतिपूर्ण राष्ट्र की तरह। यह गर्व की बात है कि हम भारतवासियों और विशेषकर कश्मीरियों के भाग्य में, जवाहर लाल जैसे महामानव को जन्म देने का सौभाग्य लिखा था, जिसने अपनी अद्वितीय शक्ति और विश्वास के साथ देश के नव-निर्माण में ऐतिहासिक योग दिया है। इस बात के लिए निश्चय ही हमें उस महान् आत्मा का आभारी होना चाहिए। जार्ज बर्नारड शा के एक कथन का पंडित जी ने बड़े चाव से उल्लेख किया है। शा का वह कथन है कि "जीवन का वास्तविक आनन्द इस में है कि तुमने स्वयं जिस उद्देश्य को बहुत बड़ा समझ लिया है उस के लिए होम हो जाओ, मुर्झाने या बेकार हो जाने से पहले पूर्णतया थक कर चूर हो जाओ!"

पंडित जी को अपने जीवन में इस उक्ति के अनुसार एक महान् उद्देश्य के लिए आत्म समर्पण करने और मृत्यु से पूर्व पूर्ण रूप से निढाल हो जाने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। उनका जन्म संसार के किसी देश के लिए भी गौरवपूर्ण हो सकता था और वास्तव में संसार उनके जन्म पर आभार की भावनाएं प्रकट कर रहा है। हमारे लिए यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि वे देश की स्वाधीनता के लिए लड़ने वाले एक निडर सेनानी थे और इस राह में उन्होंने अनगिनत क़ुर्बानियां दीं। परन्तु उनकी महानता के और भी कई पहलू हैं। उन्होंने अपने भाषणों और लेखों में और कई बातों पर विशेष रूप से ज़ोर दिया है और यदि हम उनकी स्मृति को सम्मानित करना चाहते हैं, तो हमें उन बातों को अपने हृदय में जीवित रखना चाहिए।

सब से पहली बात यह है कि उन्होंने हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन को अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में प्रस्तुत किया। उन्होंने हमें अपने चारों ओर की दुनिया का भी निरीक्षण करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार हमारा स्वतन्त्रता-आन्दोलन अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठ-भूमि में फला फूला और संसार की सामाज्यवाद विरोधी शक्तियों और शोषित जनता के विदेशी जुए से मुक्ति पाने के व्यापक आन्दोलन का एक अंग बन गया।

दूसरे, उन्होंने स्वाधीनता के अर्थ को अधिक व्यापक बनाया। राजनैतिक स्वाधीनता निःसन्देह जन-हितकारी राज्य का सर्व प्रथम और प्रमुख साधन होती है लेकिन फिर भी यह केवल साधन मात्र ही तो है, मंज़िल नहीं। किसी भी देश की स्वाधीनता, आर्थिक व सामाजिक स्वतन्त्रता के बिना अधूरी होती है। इन्हीं

व्यापक उद्देश्यों को सामने रख कर उन्होंने काम किया। योजनाबद्ध आर्थिक विकास और सामाजिक जीवन में नारी समानाधिकार के मौलिक तथ्यों के प्रति उन्होंने देश की चेतना को नया नेतृत्व दिया। उन्होंने सदैव इस तथ्य पर ज़ोर दिया कि, "भारत माता कोई आध्यात्मिक या अलौकिक धारणा नहीं है। इस धारणा का आधार तुम हो, मैं हूं और हम सब हैं, हम लाखों-करोड़ों लोग जो इस देश के वासी हैं। स्वतन्त्राता केवल कुछ लोगों के लिए नहीं अपितु सभी के लिए है, चाहे वे कोई भी हों, कहीं भी हों। लेकिन शायद एक विशेष अर्थ में, हम में से लाखों शोषित लोगों के लिए, उसका मूल्य और अर्थ अधिक होना चाहिए।" यह बात आवश्यक रूप से समाजवाद की ओर ले जाती है। पर-निर्भरता और शोषण से स्वतन्त्रता की ओर; अज्ञान और बीमारी से शिक्षा, रोज़गार, सम्पत्ति और सामाजिक सुरक्षा के अधिकारों की ओर। यह आवश्यक रूप से धर्म-निरपेक्षता की ओर भी ले जाती है, क्योंकि स्वतन्त्रता अविभाज्य है और इस पर किसी एक धर्म का विशेष अधिकार नहीं माना जा सकता। यह किसी भी देश के सभी नागरिकों के लिए होनी चाहिए और वास्तव में संसार के सभी देशों के सभी नागरिकों के लिए होनी चाहिए। इसमें जाति, धर्म, नसल और वर्ण का कोई भेद नहीं हो सकता।

"जीवन का वास्तविक आनन्द इस में है कि तुम ने स्वयं जिस उद्देश्य को बहुत बड़ा समझ लिया है उस के लिये होम हो जाओ, मुर्झाने या बेकार हो जाने से पहले पूर्णतया थक कर चूर हो जाओ !"

तीसरी बात यह है कि यद्यपि एक राज्य-सत्ता शक्ति के प्रयोग का सर्वथा परित्याग नहीं कर सकती, तथापि जनतान्त्रिक प्रेरणा और अहिंसा, निरंकुश, दमन और हिंसा के मुकाबले में सदा मान्यता देने योग्य हैं। यदि दीर्घकालीन परिणामों की आशा रखनी हो तो मानव और मानव, राष्ट्र और राष्ट्र के बीच बन्धुता और सम्पर्क को बढ़ाया जाना चाहिए। आधुनिक परिस्थितियों में शान्ति, भारतवर्ष और संसार के लिए एक अत्यन्त वांछनीय तथ्य है। किन्तु शान्ति, आक्रमण के आगे शस्त्र डाल देने से स्थापित नहीं रह सकती। उसे असत्य और अन्याय के साथ समझौता करने से कायम नहीं रखा जा सकता। लेकिन युद्ध की बातें करने और इसकी तैयारियां करने से भी शान्ति सुरक्षित नहीं रह सकती।" असत्य और आक्रमण का विरोध करते हुए उन्होंने कहा था, "हमें शान्ति के स्वभाव को पहचान कर उन लोगों की ओर भी मित्रता का हाथ बढ़ाना है जो हमारे मित्र नहीं हैं।" यही भावना पंचशील और शान्तिमय सह-अस्तित्व की नैतिक और क्रियात्मक नींव है जिसकी स्थापना में श्री नेहरू का महत्वपूर्ण योग रहा है और जिसका समर्थन करने में वे सदा अग्रणी रहे हैं।

चौथी बात यह है कि उन्होंने भारत को नये युग के अनुकूल, प्रगति की राह पर, डालने का यत्न किया । उनका आदर्श था कि किसी धर्म या मज़हब को देश की राजनीति से एकाकार नहीं करना चाहिए । यदि हम भविष्य की चुनौती का सामना करने के लिए दृढ़ संकल्प और स्वतन्त्र रहना चाहते हैं तो रंग-भेद तथा नसल, भाषा और प्रादेशिक भेद-भाव का हमारे मन में कोई स्थान नहीं होना चाहिये । यह बात मानते हुए भी कि विशाल पैमाने पर रोज़गार उपलब्ध करने के लिए लघु उद्योगों का फैलाव आवश्यक है वे इस विषय में दृढ़ मत थे कि भारत में उस समय तक सच्चे अर्थों में समृद्धि और जनता के जीवन में उन्नति नहीं हो सकती जब तक हम साईंस और बड़ी फैक्टरियों के उपयोग और महत्व को स्वीकार नहीं करते । उनका दृढ़ विश्वास था कि इन नवीन साधनों के बिना हम एक राष्ट्र के रूप में अपनी स्वाधीनता और प्रभुता स्थापित नहीं रख सकते ।

संक्षिप्त रूप में यह है उसकी लिखित कृतियों और भाषणों का अर्थ । लेकिन उन की इन मान्यताओं का प्रभाव इतना न होता यदि वे अंग्रेज़ी भाषा के उच्चकोटि के गद्यकार न होते, और यह बात उचित ही होगी कि उनकी रचनाओं के कुछ विशिष्ट गुणों की ओर हल्का सा संकेत कर दिया जाए । यह बात हमें स्मरण रखनी चाहिये कि अपने देश और संसार के लिये उन्होंने जो अच्छा और महान् कार्य किया है, उसको अलग रखते हुए भी, आगामी समय में उन्हें देश में और देश से बाहर, अपनी लिखित कृतियों के कारण आदर दिया जाएगा । उनकी शैली और कहने के ढंग का यह आकर्षण उनकी कृतियों के विचार-तत्व को प्रभावपूर्ण और मार्मिक बना देता है ।

इस व्यक्ति और उसके आदर्शों का गहरा और अधिक आकर्षक चित्र उन रचनाओं में देखते बनता है, जो उन्होंने अपने कारावास के दिनों में लिखी थीं, जैसे "एक पिता के पत्र बेटी के नाम" (१९३०) 'विश्व इतिहास की झलक" (१९३४-३५) अपनी आत्म-कथा (१९३६), तथा फुटकर निबन्धों के बहुत से संग्रह जैसे "भारत की एकता" "भारतवर्ष में अठारह महीने" "जेल के झरोखे से" और उनकी महत्वपूर्ण अमर कृति "भारत की खोज" (१९४५) ।

इन पुस्तकों से हमें एक ऐसे व्यक्ति का परिचय प्राप्त हुआ, जिसमें बौद्धिक गम्भीरता थी, भावात्मक कोमलता और कवि-सुलभ अनुभव-शक्ति थी, जिस में कृत्रिम अकड़ नहीं थी और न थी हीनता की भावना और घृणा लेकिन जिसमें मानवीय व्यापक दृष्टि थी और जिसे उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने की धुन सवार थी । नेहरू जी के बहुरंगे व्यक्तित्व के इस पहलू ने उन्हें हमारे दिलों में विशेष स्थान दिया है ।

यह ठीक है कि हम प्रारम्भ में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी और विपिन चन्द्रपाल जैसे राजनैतिक नेताओं के प्रभावपूर्ण और मार्मिक भाषणों और ओजपूर्ण वाणी द्वारा मुग्ध हो

चुके थे, परन्तु नेहरू जी की रचनाओं में हम पहली बार इस प्रकार की राजनैतिक गद्यकला से परिचित हुए जो सादा, सच्ची और बाइबल जैसी सरस और सरल शैली रखती थी। जिसमें किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं थी, जिसमें अभिव्यक्ति सुगठित और शक्तिशाली थी।

जवाहर लाल अपने प्राकृतिक वातावरण, बच्चे, फूल, पशु-पक्षी, फैले हुए खेत तथा उस पुकार के बारे में जो सितारों से आती है—एक कवि की भान्ति भावुक थे। प्रकृति के बदलते हुए रूपों तथा उसकी मौन अनन्तता के सम्बन्ध में, जो मानव के अस्तित्व और उसकी क्रियाओं की क्षणभंगुरता के सम्मुख और भी अधिक गूढ़ हो जाती है, वे सदैव कोमल कल्पना से भर जाते थे।

उन्होंने समुद्रों और पहाड़ों पर सूर्य उदय और अस्त होने के बहुत से रंगीन दृश्य देखे हैं। वे उनके सौन्दर्य में नहाए हैं। उनके वैभवशाली सौन्दर्य से वे हर्षित-पुलकित हुए हैं।

वे लिखते हैं, "किन्तु कैद में सूर्योदय का दृश्य नहीं देखा जा सकता। क्षितिज हमारी दृष्टि से ओझल था और सुबह अति देर से तीव्र किरणें बरसाती हुई हमारी विशालकाय दीवारों पर उभरती थी, जहां रंग कहीं नज़र न आते थे। हमारी आंखें सख्त होती गईं। वे हमेशा कीचड़ की दीवारों और पार्क की एकरंगी को देखते देखते धुंधला सी गई थीं। तथा रोशनी और रंग के लिए तरसती रहती थीं।"

—"वर्षा के बादल अठखेलियां करते हुए गुज़र गए। अद्‌भुत रूप धारण किए हुए, रंगों के एक उत्सव में मचलते हुए, मैं आश्चर्यजनक आनन्दमयता में झूमने लगा, और उनको मस्तमग्न अवस्था में देखता रहा।"

उनकी लेखनी का जौहर उस समय खुलता है जब वे कश्मीर का वर्णन करते हैं:

कश्मीर एक अतीव सुन्दर तरुणी की तरह हैं जिसका सौंदर्य अव्यक्तिगत और मानव की लालसा की सीमा से ऊपर है लेकिन जिस सौंदर्य का एक दूसरा पहलू भी है। कठोर पर्वतों, भीषण चट्टानों, हिम धवल श्रृंगों, ग्लेशियरों तथा तीव्रगति जल-प्रवाहों का पौरुषपूर्ण सौंदर्य।"

साधारण वस्तुओं और जाने पहचाने दृश्यों के छोटे छोटे वर्णनात्मक ब्योरों को वे दार्शनिक चिन्तन की गम्भीरता तथा एक विशाल दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

वे विशिष्ट व्यक्तियों के रेखाचित्र बनाने में भी बड़े कुशल थे। उन्होंने गान्धी जी और अपने पिता की जो कलमी तस्वीरें खींची हैं, वे नमूने के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। इसी प्रकार वे इतनी ही प्रभावपूर्ण भाषा में शोषण और बर्बरता के उस

काल का चित्रण करते हैं—"जब दो पहिए वाली फौजी गाड़ियां पैरिस की गलियों के फर्शी पत्थरों पर चरमराती और गड़गड़ाती थीं और "गिलोटीन" तक प्रतिदिन सफर होते थे अथवा 'म्यूनिख' की घटना से किंचित पूर्व लन्दन में आशा-निराशा की स्थिति का, अथवा बम्बई में मान-सून के आगमन की उत्सुक प्रतीक्षा का, पर्वतों के सौंदर्य तथा पर्वतीय प्रदेशों की एकान्त शान्ति का।

पण्डित जी का अंग्रेज़ी गद्य सदा प्रशंसनीय सीमा तक संक्षिप्त परन्तु अभिव्यक्ति पूर्ण दिखाई देता है। उदाहरणतया कमला जी की मृत्यु का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं, "चन्द क्षणों के अन्दर ही वह कोमल तन और प्यारा मुखड़ा, जो सदैव सरलता और मोहकता से मुस्कराता था, राख बन कर रह गया।" ये कुछ साधारण शब्द भी उनकी निजी वेदना को बड़ी कोमलता के साथ, लेकिन भावुकता के बिना कुछ तो छिपाते हैं और कुछ बयान करते हैं।

जब भी वे गान्धी जी का उल्लेख करते हैं, उनका गद्य क्लासिकल (शास्त्रीय) साहित्य का नमूना बन जाता है।

"एक छोटा सा आदमी आया जिसने सीधे उसकी (हिन्दुस्तानी किसान की) आंखों में आंखें डाल दीं और उसके संकोचपूर्ण दिल पर नज़रें गाड़ दीं और उसके चिरकालीन क्लेश का अनुमान कर लिया। उसकी निगाह में जादू था, उसके तन में एक आग थी और उसकी वाणी में एक आदेश था।"

"गान्धी जी आए। वे ताज़ा हवा के एक शक्तिशाली झोंके की तरह थे जिसने हमें अंगड़ाई लेने और गहरी सांस लेने पर मजबूर किया। वे प्रकाश की एक किरण की तरह थे जिसने अन्धकार को चीर कर हमारी आंखों के आवरण सरका दिए। वे एक मद मत्त आंधी की तरह थे जिसने बहुत सी चीज़ों के, विशेष रूप से जनता के दीमागों के, काम करने के क्रम को बदल कर रख दिया। वे ऊपर से अवतीर्ण नहीं हुए थे। ऐसा लगता था कि वे करोड़ों हिन्दुस्तानियों के मध्य से उभरे थे।"

"उन्होंने हमें बताया, इन किसानों और श्रमिकों के कन्धों से नीचे उतर आओ। तुम सब, जो उनकी लूट-खसूट पर जीवित रहते हो, इस व्यवस्था को समाप्त करो जो जनता में निर्धनता और विपदायें उत्पन्न करती है। राजनैतिक स्वतन्त्रता ने तब नया रूप धारण किया और उसको नवीन अर्थ प्राप्त हुआ। गान्धी जी की शिक्षा निडरता और सत्य की शिक्षा थी। अंग्रेज़ी राज्य के अधीन भारत पर भय की भावना का साम्राज्य था। दम घुटा देने वाले और गला घोंटने वाले भय, फौज का भय, बड़े पैमाने पर फैली हुई खुफिया पुलिस का भय, राजकीय अधिकारी वर्ग का, दबाने वाले कानूनों और बन्दीगृह का भय, ज़मीदारों के एजेंटों का भय, साहूकारों का भय, बेरोज़गारी और भुखमरी का भय। गान्धी जी इन सब के विरुद्ध थे।

भय से बचने की आवश्यकता पर ज़ोर देती हुई गांधी जी की धीमी किन्तु दृढ़ आवाज़ उठी, "भय मत करो।" मानव पर उनकी आस्था उनकी दृढ़ता का मूलाधार थी। वे लिखते हैं :

"मानव की आत्मा कितनी आश्चर्यजनक है। असंख्य असफलताओं के बावजूद, जिनका उसे गत शताब्दियों में सामना हुआ है, उसने अपना जीवन और अपनी सब से प्यारी निधि भी किसी उद्देश्य के लिए, आस्था के लिए, देश और सम्मान के लिए बलिदान किए हैं। उद्देश्य में परिवर्तन हुए हों किन्तु मानव के बलिदान की यह क्षमता सदैव बनी रही है। इसी लिए उसके बहुत से अपराध क्षमा किए जा सकते हैं और यह सम्भव नहीं कि उसके बारे में किसी तरह की निराशा को मन में जगह दी जाए। तबाहियों के मध्य में उसने अपनी शान नहीं गंवाई और न ही उसने उन आदर्शों तथा आस्थाओं का आंचल छोड़ा जो उसे प्रिय थे। प्रकृति की महा शक्तियों का एक खिलौना सा और इस महान् विश्व में एक दुर्बल कण जैसा होते हुए भी मानव ने इन भयंकर शक्तियों से होड़ ली है और अपने साहस और मस्तिष्क द्वारा उनको अपने वश में करना चाहा है। मानव से भिन्न कितने ही देवता विद्यमान हों, परन्तु मानव के मूल तत्व में कोई वस्तु देवताओं जैसी अवश्य है, उसी तरह जिस तरह उसमें शैतान का भी एक अंश सम्मिलित है।"

नेहरू प्रभाव पैदा करने के लिए, हास्य, कटाक्ष, बल्कि व्यंग्य से भी काम ले सकते हैं। उदाहरणतया—"जेलखाने और जेलखाने की दुनिया में एक झरोखा" नामक निबन्ध में भारत के नरमदल का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं—"वे केवल नकारात्मकता में प्रवीण हैं। वे हर जगह दोष निकालते हैं और उनसे बचने का यत्न करते हैं। उनकी आशा यह होती है कि वे ऐसा करते हुए सच्चाई को पा लेंगे। सच्चाई वास्तव में उनके लिए दो सीमान्तों के मध्य में रही है। यदि इस बात पर विवाद हो कि पृथ्वी गोल है या चपटी तो वे सम्भवतः इन दोनों पराकाष्ठावादी दृष्टिकोणों की निन्दा करेंगे और सरसरी तौर पर यह प्रस्ताव रखेंगे कि पृथ्वी न गोल है, न चपटी, बल्कि वह तो चौकोर या त्रिकोन है। इस दल की मान्यता यह है कि हर एक चीज़, यहां तक कि नेकी और बदी से भी परहेज़ किया जाए।"

अपनी "जीवन कथा" और "भारत की खोज" में वे इसी प्रकार प्रसंग और अवसर के अनुरूप कविता पदों के संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। ताकि जिस बात पर वे ज़ोर देना चाहते हैं उस पर उसी प्रकार से प्रकाश पड़े। यह सब कुछ इसी लिये सम्भव हो सका क्योंकि वे एक माने हुए अध्ययनकर्त्ता और ग्रंथों के रसिया थे और उनके साथ सदा सभी जगह किताबों का एक बड़ा संग्रह रहता था। अपनी यात्रा के बीच (जैसा कि वे स्वयं वर्णन करते हैं) वे सदा उससे अधिक किताबें अपने साथ रखते थे जितनी कि पढ़ना सम्भव होता था, क्योंकि वह एक सुखप्रद विचार है कि

हमारे इर्द-गिर्द किताबें हैं, चाहे हम उन्हें पढ़ न भी सकते हों। वे कविता के भी बड़े रसिया थे और कभी कभी मैं सोचता हूं कि आज से बीस वर्ष पूर्व, भारतीय विश्वविद्यालयों में, अंग्रेज़ी भाषा के किसी विद्वान प्रोफैसर के अतिरिक्त और कोई आधुनिक काव्य से उनकी तरह परिचित न था, फिर भी उनमें इतनी विनम्रता थी कि उन्होंने १९४५ में इलाहाबाद से एक खत में मुझे लिखा था कि मैं काव्यों की गहराइयों में अपने आपको गुम पाता हूं। जिन बहुत सारी चीज़ों से उन्हें दिलचस्पी थी उनमें पुस्तकालयों का विस्तार भी शामिल था जिसके कारण उनके विचार में, लोगों में अध्ययन का चाव पैदा होता है; क्योंकि उनके शब्दों में, "यह किसी भी देश के लिए लज्जाजनक बात है कि वहां बहुत कम लोग किताबें पढ़ें।"

उनके चिंतन में सदैव एक स्वतंत्र प्रवृत्ति काम करती रही है। इसी लिए जीवन के बारे में उनका दृष्टिकोण हठपूर्ण कभी नहीं रहा। यदि वे किसी विषय पर अपना मत प्रकट करते हैं तो उसे अंतिम और अपरिवर्तनशील नहीं मानते। यदि वे कभी धर्म (मज़हब) के प्रचलित रूप की चर्चा करते हुए उस के अंध विश्वास-पूर्ण मान्यताओं तथा तर्क हीन आस्थाओं का उल्लेख करते हैं तो साथ हीं यह भी स्वीकार करते हैं कि—"धर्म (मज़हब) ने मानव-जीवन को उपयोगी भावनाओं का उपहार भी दिया है और संसार में कई आदर्श-चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म भी दिया है। यद्यपि धर्म की कट्टर भावना ने अत्यंत संकीर्णचित्त, पक्षपाती और निर्मम निर्दय अत्याचारियों को भी उत्पन्न किया है।"

इसी तरह मार्कस के सिद्धांतों की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं—

"सामाजिक विकास के सम्बंध में मार्कस का आम दृष्टिकोण पूर्ण सत्य की सीमा तक ठीक मालूम होता है। लेकिन इस के बावजूद जीवन इतना पेचीदा और तर्क-विहीन है कि जहां तक हम इसे समझ सकते हैं यह बात बड़ी तर्क-विहीन लगती है कि इस दृष्टिकोण को एक निश्चित दृष्टिकोण के चौखटे में सीमित कर दिया जाए।" सामाजिक जीवन और व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाने में, संतुलित जीवन के लिए एक व्यक्ति के बाह्य और आंतरिक जीवन को उचित मात्रा में, संतुलित बनाने के लिए, व्यक्तियों और समूहों में परस्पर सम्बंध स्थापित करने के लिए वैज्ञानिक तरीके पर चलना उचित है लेकिन यह बात भी स्पष्ट है कि हमारे आस पास एक विस्तृत और अज्ञात जगत है और विज्ञान अपनी प्रशंसनीय उपलब्धियों के होते हुए भी इस के विषय में बहुत कम ज्ञान रखता है, हालांकि यह इस दिशा में कुछ साधारण अनुमान मात्र लगा सकता था। जीवन केवल उसी का नाम नहीं है जिसे हम देखते हैं, सुनते या अनुभव करते हैं। इस का विस्तार उस सीमा से जा मिलता है जिस के आगे अभी हमें कुछ भी ज्ञात नहीं।

पण्डित जी बड़ी विलक्षण प्रतिभा के मालिक थे। व्यक्तिगत रूप में वे अत्यंत स्वतंत्र थे। मानव प्रकृति के सब से घिनौने दो दोषों अर्थात् घृणा और भय से वे मुक्त थे जैसा कि स्व० चर्चिल ने अपनी पुस्तक—"दूसरा विश्व युद्ध" में स्वीकारा है—"वे बड़े साहस के आदमी थे। उन का मस्तिष्क बेहद लचकदार था, और वे इतिहास की विस्तृत पृष्ठ-भूमि के संदर्भ में जीवन पर एक पूर्ण इकाई के रूप में नज़र डालते थे। उदाहरण के तौर पर एक प्रकार की बेरुखी और निर्णय की तीव्रता, जिसके सम्बंध में कुछ लोगों का विचार है कि प्रधान मंत्री के ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण, एक प्रबन्धकर्ता के रूप में उन्हें इन गुणों का अवश्य स्वामी होना चाहिए था। वे अपनी सवारी का लक्ष्य सितारों में निश्चित करते थे, लेकिन कभी कभी, यह भूल जाते थे कि (सवारी) बैलगाड़ी है, उड़नखटोला नहीं। इसी कारण यह सवारी कभी कभी कीचड़ में धंस जाती है। वे भुंझला उठते थे। परंतु वे लोग जो मार्ग को समतल और कीचड़ रहित करने पर नियुक्त होते थे, जानते थे कि उन्हें क्षमा किया जाएगा और वास्तव में उन्हें क्षमा प्राप्त होती थी। नेहरू जी न तो किसी पर अविश्वास करते थे, और न ही किसी को भरोसे के अयोग्य समझते थे। कुछ लोगों की सम्मति में इसी कारण यह बात सम्भव हो सकी कि पंचशील के एक सांझीदार ने उनकी पीठ में छुरा घोंप दिया। यह कहना शायद अनौपचारिक लगे परंतु इसे ज़ाहिर करना ज़रूरी है कि यद्यपि उन के कारनामें बहुत हैं परंतु हमें आज उनको और उनके गुणों को उनके कारनामों से अधिक रोशनी में जांचना चाहिए कि वे किन आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते थे। वे समस्त राष्ट्र की आशाओं और कामनाओं के प्रतीक थे। भविष्य का चाहे जो कुछ भी निर्णनय हो, इस में संदेह नहीं, उन की वसीयत के शब्दों में :

"......वह एक ऐसा आदमी था जो अपने पूरे दिल व दिमाग से हिन्दोस्तान से और हिन्दोस्तान वासियों से मुहब्बत करता था, और हिन्दोस्तानी भी उस की खामियों को भुला कर उस से बेहद, अज़हद मुहब्बत करते थे।"

●

यह वन है सम्मोहक
गहरा और घनेरा
किन्तु मुझे
अपने वादे पूरे करने हैं
अभी बहुत कोसों चलना
सोने से पहले
अभी बहुत कोसों चलना
सोने से पहले

—राबर्ट फ्रास्ट

अमर निराला

रामनाथ शास्त्री

जब कभी होगी कहीं चर्चा कि
हिन्दी के नए इस काव्य को
किस कवि की साधना ने
सब से बढ़ कर
मान, गरिमा, बल दिया है ?
किस निडर साधक के तप ने
उसको जन-जीवन का सहयोगी बनाया ?
उस को छाया लोक के स्वप्निल धुन्धलकों से निकाला ?
किस ने उस को वेदना, करुणा के रस से सींच कर,
क्रान्ति के ज्वालानुहारी अंकुरों के हित किया था उर्वरा ?

बन्धनों की कैद की पीड़ा से आकुल,
छट पटाती कल्पना की घुटन ले,
भाव-विहगों की विमुक्ति के लिए विह्वल बनी,
भारती ने
इस नए युग के अरुणिमा-काल में,
किस निडर क्रान्ति-पुजारी से कहा था-
"क्या कभी इन रूढ़ियों की दासता से भी मुझे मुक्ति मिलेगी ?
"आत्मा मेरी भला कब तक-
पुराने मूढ़ इन सांचों में ही ढलती रहेगी ?
और मेरे भाव-पथिकों को भला क्यों
इन घिसी औ तंग राहों की विवशता पड़ रही है झेलना ?"
कौन था वह सव्यसाची, साधना का सूरमा,

जिस ने यह क्रन्दन सुना,
और बढ़ कर के किया प्रतिकार,
बन्धन खोल डाले,
रूढ़ियों के लोह-प्राचीरों को तोड़ा,
छन्द की वे शृँखलाएं फूँक डाली
और कुंठित कल्पना की नभ सी लगती
काल्पनिक छत्त ही उठा कर दूर फैंकी

जिस के नीचे ही उड़ा करते थे भावों के विहग?
कौन था वह निडर साधक दिव्य दृष्टि,
जो स्वयं निज साधना सा रम्य था,
दिव्य वपु-कान्ति-समुज्ज्वल,
तुंग हिमगिरि-शृंग सा,
भागीरथी की पुण्य धारा-तुल्य पावन;
जिसकी वाणी में गर्जते नाहरों का ओज था,
जिसकी वाणी थी जुही के रेशमी सौन्दर्य सी।

जो, धरा के पुत्र, कृषकों का सखा था,
उन की बदहाली से पीड़ित जो हुआ इतना
कि, मन हुँकार भर, रोआ था जिससे
जन्म लेकर मेघ क्रान्ति के गर्जने थे लगे।

देश के मसले हुए गौरव की जो तस्वीर था।
शक्ति की सु-अर्चना में लीन-
जो स्वयं युग के लिए, बस राम बनवासी ही था।

और अपने शैल सम उर की शिला पर
नासमझ, भयभीत, लघुजीवों के कितने
सह लिए जिसने सदा आघात,
बिना विचलित हुए ही।
उनकी लघुता ने ऊंचाई और दी उसको,
व्यंग्य-शूलों ने,
हंसी अंगारकों ने,
उस तपी की साधना को बल दिया,
योगी हुआ,

संसार के कालुष्य से ऊपर हुआ,
मूढ़ जन कहने लगे-
पागल है यह !

जो जगत् के मान-मूल्यों को लगाए ठोकरें,
और दुर्दमनीय जिसका हो अहं इस कोटि तक,
कि झुकाया जा सका तिलभर किसी से भी नहीं,
पर,
पराए, बेसहारा, बिलखते लघु क्लेश की-
हल्की तपश से जो पिघलता ही रहा !
कौन था वह निडर मानव ?
किस की दृष्टि की किरण,
भिक्षुक की मटमैली पुरानी जीर्ण झोली की तरह
भूख से पीड़ित, तिरस्कृत
मनुज-मन की अतल गहराई में उतरी
हैं जहां रिसते हुए नासूर घावों के कई,
और उनके हित सुखद उपचार जो बनती गई ।

किसने भारत की दुखी विधवा को देखा,
देव-मन्दिर-दीप की जलती शिखा-सा ?
किस ने जलते जेठ की जलती-झुलसती धूप में
भाग्य-वंचित देश का परिचय जताती,
श्यामलांगी तरुण वय की श्रमिक बहू को
अपनी चमकती नज़र की पैनी कटारी के तले-
शील के अनमोल धन को कर सुरक्षित
सड़क पर देखा था पत्थर तोड़ते ?
एक कुक्कुरमुत्ता भी
जिस की कला के जादूमय वरदान ले,
"बुर्जुया" शोषण के गर्वीले प्रतीकों के लिए
प्रलय के सब रौद्र रूपों का प्रदर्शन हो गया;

वह युग का मानव कौन था ?
मानव अमर वह कौन था ?

तो निराला ! अमर मानव !
बाकी सब समुदाय में,

तुम अकेले,
एक तुम ही हिल सकोगे,
एक तुम मुस्काओगे।
एक तुम होगे कि जिस को
ये असंख्यक, दृष्टियां,
औ' वाणियाँ,
औ' उंगलियां,
निर्देश करकर के कहेंगी,
यह है वह मानव अलौकिक !
यह है वह साधक अमर वर !!



गगन गगन है गान तुम्हारा,
धन धन जीवन यान तुम्हारा।
नयन नयन खोले हैं यौवन;
यौवन यौवन बांधे सुनयन
मानव मानव मान तुम्हारा।
क्षिति को जल जल को सित उत्पल,
उत्पल को रवि, ज्योतिर्मण्डल,
रवि को नील गगन तल पुष्कल
विद्यमान है दान तुम्हारा।
बालों को क्रीड़ा प्रवाल है,
युवकों को तनु कुसुममाल है,
वृद्धों को तप, आल बाल है,
छुटा-मिला जय-ध्यान तुम्हारा।

—'निराला'

हब्बा की काव्य-साधना का प्रधान स्वर शृङ्गार है। शृङ्गार के संयोग का क्षणिक साक्षात्कार होने के कारण उसकी कल्पना ने इसके वियोग में गहरे रंग भरे हैं।
जीवन की यात्रा में उसे फूल न मिल सके अतः उसने कांटों से अपनी झोली भर ली।



हब्बा खातून

एक परिचय !!!

प्रो० काशीनाथ दर

कश्मीर की सांस्कृतिक थाती जितनी सम् है उतनी ही विचित्र भी। प्रकृति की इ लाडली मानसपुत्री ने जहां समस्त संसार को अपनी नैसर्गिक तथा अप्रतिम शोभा-सुषमा से चकित किय वहां अपने मानसिक उबाल के माध्यम से साहित्य के हर एक अंग में नए अध्याय जोड़ दिए हैं। इतना ही नहीं विश्व के तीन बड़े धर्मों ने इसे अपनी प्रयोगशाला बनाया। इस तरह यहां के जन-जीवन में बौद्धों की करुणा, हिन्दुओं की सहिष्णुता तथा मुसलमानों की एकनिष्ठता का समो जाना स्वाभाविक है। आज कल का कश्मीर भले ही नाम से हिन्दू या मुसलमान हो, संस्कारवश उसमें ये तीनों गुण घुल-मि गए हैं। सम्भवतः यही प्रमुख कारण कश्मीरियों के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण में निहि है। इस प्रकार जब चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग एक विदेशी संस्कृति यहां अन्दर, आने के लिए द्वार पर दस्तक दी तो उसके लिए जैसे कश्मीरियों के जीवन दृष्टिकोण ने पहले से ही उर्वरा भूमि तैयार कर रखी थी। इस्लाम की प्रचारात्म उग्रता किसी उल्लेखनीय प्रतिक्रिया के अभाव में विवश होकर सौम्यता में बद

गई। राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण में एक अभूतपूर्व मोड़ आया; जन-विश्वासों को धक्का लग जाने का भय था, परन्तु इसी धर्म संकट में साहित्य ने अपना दायित्व पूरा किया।

हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के इस संगम पर लल्लेश्वरी का प्रादुर्भाव हुआ, साहित्य के माध्यम से इस नारी-विभूति ने जन-विश्वासों को ढह जाने से बचाया। जनता के सामने उस समय प्रत्यक्ष अति कड़वा था, अतः इस जागरूक कवयित्री ने प्रत्यक्ष की कड़वाहट में परोक्ष की मिठास मिला दी। भौतिकता से आंखें मीच कर आध्यात्मिकता का सुनहरा स्वप्न जनता के सामने रखा। इस प्रकार वर्तमान को हेय समझ कर आध्यात्मिक लाभ के व्याज से इसने कश्मीरी जनता को जीने के लिए प्रेरणा दी, उनके लिए संजीवनी औषधि जुटा दी। 'लल्ला' का आध्यात्मवाद मूलतः शैव दर्शन का ऋणी है।[1] परन्तु समय की नाड़ी पहचानते हुए इसने इसमें इस्लामी सूफीवाद की भी पैवन्द लगा दी। यह समय की मांग भी थी, क्योंकि औपचारिक धर्म-परिवर्तन से पहले ही कश्मीर में इस्लामी सूफीवाद प्रविष्ट हो चुका था,[2] और विचारों के आदान-प्रदान से कश्मीरी जीवन-दर्शन (शैव) से इसका सान्निध्य स्थाप्ति हो चुका था। 'लल्ला' की उक्तियों में यद्यपि हिन्दु-शैव-दर्शन का स्वर मुखर है परन्तु इस्लामी सूफीवाद का प्रभाव भी उनमें स्पष्ट है :

"साहेब छु बिहत पानि दुकानस
सॉरी मँगान कैंछा दिय।
रट नो कैंसी हुन्द रॉछ नो वानस
यि चे गछिय पाने नि[3]।।"

[साहब स्वयं दुकान पर बैठा है; सब कुछ न कुछ मांगते हैं; किसी को कोई रोक नहीं, दुकान की कोई रखवाली नहीं, जो तुम्हें चाहिये स्वयं उठा कर ले लो।]

इस 'वाक्'[4] में साहब शब्द कबीर[5] ही की तरह परंब्रह्म का पर्याय है, और सूफ़ी शब्दावली से उद्धृत है। आगे चल कर शेख नूरदीन ने लल्ला से स्वर मिला कर आध्यात्मिक्ता का राग अलापा। इस तरह हिन्दू और मुस्लमान अध्यात्मवादियों

---

[1] *Dr. L. Barnett. Dr. Grieson, 'Lala-Vakyani'*
[2] *Dr. Sufi Mohiud Din—Kasheer.*
[3] *Lalleshwari, Edited by A. K. Wanchoo, 1996 Bkm.*
[5] लल्ला के मुक्तकों के लिये एक पारिभाषिक शब्द।
[5] देखिये लेखककृत 'कबीर और लल्लेश्वरी' 'ज्योति', श्रीनगर भावात्मक एकता अंक १९६३।

ने एक समानरूप से कश्मीरी जनता को आध्यात्म और असीम से एकाकार होने के लिये बराबर प्रेरणा दी। लल्ला तो सच्चे अर्थों में कश्मीरी-काव्य का प्रथम प्रकाश स्तम्भ है।

परन्तु जब हब्बा के स्वभाव-कोमल शरीर ने आंखें खोलीं, तो उस समय तक आध्यात्म की यह संगीत लहरी बासी पड़ गई थी। जीवन के प्रति मूल्यों और आस्थाओं में युगान्तर आ चुका था। समष्टि रूप में सोचने के स्थान पर व्यक्तिगत चिन्तन की प्रधानता हो गई। बहिर्मुखता ने अन्तरमुखता के लिये जगह खाली की; अतः इस भावुक कवयित्री ने प्रचलित लीक पर न चल कर कश्मीरी काव्य को एक स्वस्थ और प्राणवान् दिशा दी। 'जग-बीती' के मोह में न पड़ कर इस ने 'आप-बीती' को वाणी दी। अपने वैयक्तिक अनुभवों तथा अनुभूतियों को समेट कर इस भावविह्वल नारी ने ऐसे मधुर-करुण काव्य का सृजन किया जो स्वयं में ही अपना उदाहरण है।

हब्बा को इन्हीं कारणों से कश्मीरी रोमान-गीतों की जननी कहा जाता है। सामयिक परिस्थितियों के परिवेश में उसका अन्तर्मुखी हो जाना स्वाभाविक जान पड़ता है। कश्मीर का अन्तिम देशीय शासक 'यूसुफशाह चक्क' भोग और विलास की प्रतिमूर्ति था।[1] उसके शीशमहलों में कामुकता का नग्न नृत्य हो रहा था। उसकी प्रजा दो जून रोटी के लिये तरस रही थी। मुग़लों ने इस निष्क्रिय शासक की विलास प्रियता और उसकी बिलखती प्रजा के आर्थिक शोषण से लाभ उठाकर छल और बल से यूसुफ के शीशमहलों को धराशायी कर दिया, और इस तरह राजनीतिक वातावरण विषाक्त होने लगा। इसी समय मुस्लमानों की एक जाति 'शियों' ने 'सुन्नियों' पर अत्याचार करने आरम्भ किये।[2] इस तरह धार्मिक वातावरण भी संतोषजनक न था। समाज विशृङ्खल हो चुका था। हिन्दू पूर्ण रूप से निश्शंक जीवन व्यतीत नहीं कर रहे थे और स्वयं मुसलमानों में जातिवाद हिंसक रूप धारण कर रहा था। ऐसे अव्यवस्थित वातावरण में कवि का समष्टि के लिये न सोचना नैसर्गिक जान पड़ता है। इतना ही नहीं उस समय दैवी प्रकोप एक और रूप में प्रकट हुआ। १५७६ ई० में असमय हिमवर्षा होने के कारण कश्मीर में तीन वर्ष तक दुर्भिक्ष का विनाशकारी ताण्डव देखने में आया।[3] ऐसे संकटपूर्ण वातावरण में भावुकता ने प्रयत्क्ष का रास्ता न पकड़ कर परोक्ष के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति की। ऐसे वातावरण से जूझने और उसे मनोनुकूल बनाने की किसी में सामर्थ्य न थी; अतः एक प्रकार से इस कटुता को भुलाने के लिये कवयित्री ने प्रेम और अनुराग के गीत गाये।

---

[1] *Dr. Sufi Mohi-ud-Din—'Kasheer'.*
[2] *Tarikhi-Hassan.*
[3] वही

दुर्भाग्य से इस कोकिल कंठी के जीवन वृत के सम्बन्ध में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता, केवल जनश्रुतियों और किंवदिन्तयों का एक जाल-सा उसके व्यक्तित्व पर बुना हुआ है। धुंधलके में छिपे हुए उसके रंगीले जीवन के विषय में हमें कई फारसी इतिहासकारों के उद्धरण मिलते हैं। इन इतिहासों का प्रामाणिक महत्त्व विवादास्पद है। हब्बा के विषय में इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध इस लिये है कि इन में से कोई भी इतिहासकार उसका समकालीन न था। वे भी सुनी सुनाई बातों का ही अपने इतिहासों में वर्णन करते हैं, फिर भी उन से लिखित वृत के प्रकाश में हम हब्बा के जीवन की धूमिल झांकी पा सकते हैं।

सर्वप्रथम पं० बीरबल काचरु[1] ने हब्बा के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। वह कहते हैं कि यूसुफशाह हब्बा खातून नाम वाली प्रेयसी से बहुत लगाव रखता था। उसके पूर्वज पांपुर[2] के पास 'चन्द्रहार' गांव के रहने वाले थे। जब वह वयस्का हुई तो उसका विवाह अपने ही वंश में किया गया; कुछ समय के बाद भावुकता में आकर वह कश्मीरी गाने गाने लगी, जिस पर उसके ससुराल वाले उससे खिन्न होने लगे और अन्त में उसे घर से निकाल दिया। मायके जाते हुए रास्ते में उसे यूसुफशाह के कर्मचारियों ने पकड़ लिया और अपने बादशाह के पास ले गये, जिस ने इसके रूप लावण्य और संगीत-कला पर मुग्ध होकर इसे 'सहवास' से सम्मानित किया।

श्री काचरु का यह इतिहास हब्बा से लगभग ढाई सौ वर्ष बाद लिखा गया था, और इसी तरह इसके कोई साठ-सत्तर वर्ष बाद हसन कोहयामी अपने प्रसिद्ध इतिहास "तारीखे-हसन[3]" में हब्बा के सम्बन्ध में ये लिखते हैं—"कहते हैं कि हब्बा पांपुर के चन्द्रहार गांव के एक किसान की लड़की थी। उसकी शादी एक लम्पट और अकिंचन व्यक्ति से हुई और हब्बा की इस से पट न सकी। इस तरह वे दोनों, पति-पत्नी अलग हो गये। एक दिन रास्ते में चलते हुए यूसुफशाह की नज़र उस पर पड़ी जब कि वह एक कश्मीरी गीत गुनगुना रही थी। यूसुफशाह सुध-बुध खो बैठा और दूसरे दिन इसके माता-पिता को असंख्य धन देकर इस सुन्दरी को अपने 'सहवास' का सम्मान दिया।"

श्री काचरु और हसन के इन वृत्तों में यद्यपि कुछ अन्तर है फिर भी दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं, प्रथम यह कि हब्बा परित्यक्ता न हो कर भी अपने पति

---

[1] तारीखे कश्मीर (फारसी)।

[2] पद्मपुर—राजतरङ्गिणी।

[3] *Edited and Translated by Research Deptt. J&K Govt.*

से अलग रहती थी; दूसरा यह कि दोनों इतिहासकारों ने 'सहवास' का प्रयोग करके यह बता देना चाहा है कि वह बादशाह की परिणीता न हो कर प्रेयसी मात्र थी।

आगे चल कर मुहम्मद दीन 'फ़ौक़' ने[1] हब्बा के वास्तविक नाम की ओर सब से पहले संकेत दिया है। वे कहते हैं कि माता पिता ने इस का नाम 'ज़ून' रखा था, क्योंकि वह चांद की तरह अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी थी। विवाह के बाद पति से अलग होने के बाद फ़ौक़ महोदय हब्बा और एक सूफी 'ख्वाजा महमूद' की भेंट की बात कहते हैं, जिसने इस का नाम 'ज़ून' से बदल कर हब्बा रखा। हसन के वृत्त से आगे चल कर इस में इतना ही भेद है कि हसन हब्बा को रखेल समझते हैं जब कि फ़ौक़ महोदय इसे महारानी। फ़ौक़ ने अपनी पुस्तक में यह उल्लेख नहीं किया कि श्री काचरु और हसन कोहयामी के अतिरिक्त उन के पास और कौन सी सामग्री थी जिस के आधार पर उन्होंने हब्बा को बेगम लिखा है।

कश्मीर के प्रसिद्ध रोमानी कवि स्व० महजूर[2] ने भी फ़ौक महोदय के ही विचारों का अनुमोदन किया है, और स्व० आज़ाद[3] ने इस सम्बन्ध में हसन का अनुसरण किया है केवल इस अन्तर के साथ कि हब्बा का असली नाम 'ज़ून' था।

इस तरह यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यदि हब्बा का एक और नाम भी रहा हो तो इसमें कोई असंगति नहीं। कश्मीर में अभी तक विशेषतया पण्डित घरानों में पुत्री का मायके का नाम ससुराल में बदल जाता है। एक कारण यह भी हो सकता है कि बादशाह के सम्पर्क में आने पर 'ज़ून' ठेठ कश्मीरी नाम बदल कर अरबी नाम से उसे पुकारा गया हो। संभ्रान्त कुलीनता दिखाने के लिये इस के साथ 'खातून' भी जोड़ा गया हो।

अब हमें यह देखना है कि उस के मुक्तकों की आन्तरिक साक्षी के साथ ऊपर दिये गये तथ्य कहां तक मेल खाते हैं। उसका असली नाम 'ज़ून' होना उसके इस पद्य से ध्वनित होता है :

" छस रिवान नालँ दिवान ग्रहणि मथ लोग ज़ूनि तै "
मैं रो रही हूं, चीत्कार कर रही हूं कि चांद (ज़ून) को ग्रहण लग गया।

और उसके जन्मस्थान चन्द्रहार गांव की पुष्टि उसके इस पद्य से होती है :

---

[1] "खवातीन कश्मीर", लाहौर, १६४०।

[2] हब्बा खातून—कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित।

[3] "कश्मीरी जबान और शायरी"—कल्चरल अकादमी।

"माल्युन म्योन प्यठ चन्द्रहार छुये"

मेरा मायका चन्द्रहार के ऊपर वाले पठार पर है ।

परन्तु ये दोनों पद्य श्री अमीन कामिल द्वारा सम्पादित 'हब्बा खातून'[1] में नहीं मिलते । उन्हें ये दोनों पद्य प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं ।[2] सम्भवतः किसी अज्ञात कवि ने हब्बा के सम्बन्ध में प्रचलित विश्वास के आधार पर उसकी रचनाओं में इन पद्यों को जाने अनजाने में मिला दिया हो ।

जनश्रुतियों के आधार पर हब्बा के विषय में एक और बात उल्लेखनीय है । उसे 'भोटिया देश' से सम्बन्धित कहा गया है; इसका कारण सम्भवतः यह रहा हो कि 'शियों' के अत्याचार के तले पिसते हुए 'सुन्नी' यह कब सहन कर सकते थे कि उनकी ही जाति की एक लड़की 'शिया बादशाह' की खेल बन जाये, विशेषकर इस लिये भी क्योंकि हब्बा औपचारिक रूप से बादशाह की विवाहिता पत्नी न थी । अतः वह कश्मीरन न हो कर भोटिया थी । लेकिन इन जनश्रुतियों का हमारे लिये कोई महत्त्व नहीं है ।

आन्तरिक साक्षी के सूत्र को आगे बढ़ाते हुए हम केवल यह कह देना चाहते हैं कि कामिल महोदय द्वारा सम्पादित 'हब्बा खातून' में केवल बीस गीत संगृहीत हैं, इस के अतिरिक्त इस भावप्रवणा कवयित्री के बीसों और गीत लोकजिह्वा पर विराजमान् हैं । जब तक इन सब गीतों का संग्रह करके एक बृहत् प्रामाणिक संस्करण तैयार नहीं किया जाता तब तक हमें कामिल महोदय के इस संस्करण पर ही तुष्टि करनी होगी । सौभाग्य से हब्बा अपने जन्म के सम्बन्ध में मौन नहीं है; वह बड़े चाव से कहती है :

"मेलँ मॉजि रछनस, मोल क्याह दूरे
सास बज़ि चोंज़ि आसम सुलवान ।
मे नो ज़ान्योव लौदसुत लूरे
केंसि मा रॉविन शूरे पान ।।"[3]

मेरे माता पिता ने किस लाड-प्यार से मुझे पाला था, सैंकड़ों दासियां मेरे नाज़ उठातीं थीं, मुझे पता न था कि यह बना हुआ काम बिगड़ जाएगा, किसी का बचपना यूं खो न जाए ।

---

[1] कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित ।

[2] लेखक से एक भेंट में कामिल महोदय ने बताया ।

[3] हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी पृष्ठ ३६ ।

इस तरह यह बात साफ हो जाती है कि हब्बा का मैका एक अच्छा खाता-पीता घराना था, जिसकी पुनरुक्ति कवयित्री यूं करती है :

"मालिन म्येनिय अर्बाब आसिय,
तवय द्रास हब्बखोतून नाव।
कम कम गोंदर आयेयि च़सिथ,
दोह हरियामत लूसित गोम[1] ।।"

मेरे मायके वाले अपने समय के सामन्त थे। इस लिए मेरा नाम हब्बा खातून पड़ा; क्या कहूं, मुझ पर युवक जान छिड़कते थे, परन्तु वे दिन ढल चुके।

अतः नाम के साथ खातून जोड़ने का आग्रह उसके बहुत ऊंचे सामंत कुल में जन्म लेने के कारण हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि हब्बा अनपढ़ न थी :

"मेॅल माजि त्रेवनस सबकस दूरे
ओखनन वुलनम मूरे पान।
आर रोस तुलनम नार तोम्बूरे
कैंसि मा रॉविन शूरे पान[2] ।।"

मेरे माता-पिता ने मुझे दूर विद्योपार्जन के लिए भेजा। अध्यापक ने मेरी पिटाई में कोई कसर न छोड़ी, निर्दय ने मेरी हड्डी-पसली सेंक दी; किसी का बचपना यूं खो न जाए।

इसके अतिरिक्त कुलीन गृहस्थों की तरह उसकी धार्मिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया था :

"सिपारॅ त्रिह मरिॅ परिम यख आनो
फेरि न कुनि गोम ज़ेरि ज़बरे।
अॅश्कुन खत पोरनु कैंसि यख आनो
चे क्यहो वातियो म्यानि मरनय[3] ।।"

मैंने कुरान-शरीफ के तीस सिपारे एक बार ही पढ़ डाले, और उन्हें दुहराने में 'ज़ेर' या 'ज़बर' का अंतर न आया, प्रेम-पत्र किसी से एक बार पढ़ा न गया, तुझे ऐ प्रीतम, मेरे मरने से क्या मिलेगा?

---

[1] वही पृष्ठ ७४
[2] वही पृष्ठ ३८
[3] हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी पृष्ठ ३६।

जीवन के सब से बड़े सौदे—विवाह के सम्बन्ध में हब्बा यूँ मुखरित होती है :

"मॉत मॉजि वुननम डक्यवॅड कूरे
वैंरिव आंगिनि छिय प्रारान।
रोपि डोलि ऑसिय सोनॅ कदून्रे
कैंसि मा राविन शूरे पान्न।।"[1]

मेरे माता पिता ने मुझे कहा कि सुहागन बेटी, तेरी ससुराल वाले आंगन में प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरी रूपहली डोली के बांसों पर सुनहरा कागज़ मढ़ा हुआ था।

परन्तु मालूम नहीं कि किस अशुभ घड़ी में हब्बा की यह रजत-खचित डोली मैके से ससुराल चली थी कि उस सुहागन की ससुराल वालों से निभ न सकी, उसे उनके क्रूर-व्यवहार की प्रतिक्रिया में मैके वालों को सहायता के लिए पुकारना पड़ा :

"हशि लॉयनम टॅपिस थप
सूय म्ये गव मरनि खुॅत सख।
यन्द्रँ पचि प्यठ नैंद्र प्येमो
च़खिर फुटुम मालिन्यो
वॉखियन सीत वारॅ छस नो
चारॅ करु म्योन मालिन्यो[2] ।।"

चर्खा कातते कातते मेरी आंखें चरखे के चक्र पर लग गईं, जिस से वह टूट गया, मेरी सास ने मेरी चोटी खींची जो मेरे लिए मृत्यु से भी कष्टदायक पीड़ा थी, मेरी सुसराल वालों से नहीं बनती, मायके वालो, मेरा उद्धार करो !

हब्बा अपने पति के नाम का उल्लेख इस प्रकार व्यंग्य रूप में करती है :

"मेहो कँर चय कित फम्ब मोयान्द,
हा 'अज़ीज़ि'[3] 'ज़ूनि'[4] मा रोश
खोतूनि पीरिय पूरि सामांनय
छाव म्यान दॉनै पोश ।।"[5]

(मैंने तुम्हारे लिए कठिनतर खोज की, ऐ अज़ीज़, अपने चांद से मत रूठो, मैंने सोलह शृंगार किए हैं, आओ मेरे अनार फूलों के समान यौवन को लुटाओ।)

---

[1] हब्बा खातून—कल्चरल अकादमी।

[2] हब्बा खातून--कल्चरल अकादमी पृष्ठ ६१।

[3] पति का व्यक्तिवाचक नाम, जातिवाचक 'प्यारे'।

[4] हब्बा का असली नाम।

[5] हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी पृष्ठ ५२।

पति वियोग में व्याकुल हब्बा सदा अपने भाग्य को कोसती रहती है :

"यारि दादे तारि ग्यसो
बरँ वुक छुम आसतुय
हब्बखोतूनि वुन इशारा
दिल हुश्यारा मालिनो ॥"[1]

(अपने प्रियतम के लिए मैं व्याकुल हो रही हूं, मेरा जीवन मुझ पर भारी हो रहा है, मेरे मायके वालो मेरे इस इशारे (दुःख) को समझो ।)

यह बात तो निर्विवाद है कि हब्बा के ससुराल वालों ने जब उसे घोर यातनायें दीं तो उसके माता पिता ने उसे मायके बुला लिया और वापिस भेजने के प्रति शिथिलता दिखाई । इस मानसिक स्थिति में वेदना और घुटन का तीव्राघात होना स्वाभाविक है ।

जीवन के ढलते वर्षों में उसे यह खेद रहा कि यदि वह इस तड़प को ईश्वरोन्मुख करती तो उसका न इहलोक ही बिगड़ता और न परलोक :

"हब्बा खोतून छय अरमान र०येवान
कॅरमय न ज़ाँह बन्दगी ।
यावुन रोवमुत छुम याद दीवान
च्ये क्यहो गयी म्येन दिय ॥"[2]

(हब्बा खातून को यह खेद रहा है कि उसने कभी तुम्हें बन्दगी नहीं की । खोई हुई जवानी मुझे याद आ रही है, तुम्हें क्यों मुझ से वैर हुआ ?)

आन्तरिक साक्षी के रूप में हम हब्बा के जीवन सम्बन्ध से ही कुछ कड़ियां जुटा सके हैं । उसके जन्म और मरण के विषय में हमें बड़ी सतर्कता से काम लेना पड़ेगा । उसके जीवित रहने की अवधि सौभाग्य से हमें उसके समकालीन और प्रेमी 'यूसुफशाह' के उल्लेख से मिल जाती है । कश्मीर के इस अंतिम स्वतंत्र शासक का राज्यकाल १५७६ ई० से १५८५ ई० तक माना गया है । इन वर्षों में हब्बा का जीवित होना नितान्त असंदिग्ध है । यह भी सच है कि यूसुफ अपने जीवन की संध्या में अधिक कामुक हो चला था, सम्भवतः इन वर्षों में इसे हब्बा का सहवास प्राप्त रहा होगा । फौक महोदय ने "तारीख बहारिस्तान शाही" के आधार पर हब्बा की जन्म तिथि १५४१ ई० से १५५२ ई० में रखी है । स्व० आज़ाद ने भी इसी मत का

---

[1] वही पृष्ठ ६२ ।

[2] हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी पृष्ठ ५८ ।

समर्थन किया है[1]। इस विषय के सम्बन्ध में कामिल महोदय लिखते हैं, मुझे इस तारीख (बहारिस्तान शाही) में हब्बा के जन्म की तिथि की बात तो अलग रही, इसका उल्लेख तक नहीं मिला[2]।" यह घटना तो सर्वविदित है और इतिहास सम्मत भी कि अकबर बादशाह ने १५८५ ई० में कश्मीर पर अधिकार किया और यूसुफशाह को बन्दी बना कर बंगाल भेज दिया। अतः अपने प्रेमी का सितारा डूब जाने पर हब्बा की क्या दशा रही होगी, यह सब अज्ञात है। सम्भव है भविष्य में इस सम्बन्ध में नए तथ्य प्रकाश में आयें। स्व० फौक, स्व० आज़ाद, तथा स्व० महजूर हब्बा की आयु ५६-५७ वर्ष के लगभग मानते हैं। इनमें जनश्रुतियों का आभार भी सम्मिलित है। अतः जब तक कोई ठोस तर्क इस अनुमान को झुठलाने के लिए हमारे सामने नहां आता, तब तक इन महानुभावों के इस मत को मानने में हमें कोई संकोच नहीं।

हब्बा का जन्मस्थान आन्तरिक और बाह्य साक्ष्य के आधार पर चन्द्रहार ही है। श्रीनगर से लगभग पांच छः मील की दूरी पर "पाम्पुर" का चिरविख्यात गांव केसर की क्यारियों के कारण प्रसिद्ध है। इसी पांपुर से बायीं ओर डेढ़ मील की दूरी पर चन्द्रहार नाम का छोटा सा गांव आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इस गांव की टेकड़ियों पर केसर की क्यारियों की छटा कार्तिक पूर्णिमा की चांदनी में देखते बनती है। यहां के झरने भी बड़े सुन्दर हैं।

"हब्बा" शब्द स्पष्टतः स्त्रीवाचक है और अरबी "हबीब" का संक्षिप्त रूप है। हबीब का अर्थ प्यारा है, अतः हब्बा खातून का अर्थ हुआ प्यारी रमणी। अपने अपूर्व व्यक्तित्व के नाते वह केवल यूसुफ शाह की ही प्रेयसी न थी, अपितु समस्त कश्मीरी जनता के दिल की रानी थी।

हब्बा की काव्य-साधना का प्रधान स्वर शृंगार है। शृंगार के संयोग-पक्ष का क्षणिक साक्षात्कार होने के कारण उसकी कल्पना ने इसके वियोग-पक्ष में गहरे रंग भरे हैं। जीवन की यात्रा में उसे फूल न मिल सके, अतः उसने कांटों से अपनी झोली भर ली। यूसुफ का साहचर्य पाकर भी हब्बा संयोग के गीत नहीं गा सकी। सम्भवतः जीवन के द्वार पर जो भर्त्सना उसे मिली उसकी प्रतिध्वनि बराबर उसके मानसिक धरातल को झंकृत करती रही। क्षणिक सुख स्थायी दुःख के नीचे दब गया।

---

[1] कश्मीरी ज़बान और शायरी।

[2] हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी, भूमिका।

हब्बा ने जिस समाज में जन्म लिया था, वह आन्तरिक शोषण और बाह्य आक्रमण के दो पाटों में पिसता जा रहा था। सामंतशाही पूरे यौवन पर थी। कश्मीर की राजनीतिक बिसात पर कुशल मुग़ल नाना प्रकार के मोहरे लड़ा रहा था। जनता का सुख चैन छिन चुका था। ऐसे ही दूषित वातावरण में हब्बा का जन्म हुआ। उसके निजी जीवन की घुटन समाज में पनपती हुई कुण्ठा से कुछ कम न थी, अतः हब्बा ने जन-जीवन की उपेक्षा करके भी निजी जीवन के व्याज से उसका प्रतिनिधित्व किया। वह जीवन से भागी नहीं। उसका काव्य इसी कारण पराजित के गीत नहीं कहा जा सकता। 'स्व' में समाज को विलीन करके उसने आंसू बहाए हैं। हब्बा में व्यक्तिगत अहं इतना प्रगल्भ था कि समाज का प्रतिबिम्ब उतारने के बदले उसने अपने हृदय को वाणी देना ही अधिक संगत समझा।

इसी व्यक्तिगत कविता की पराकाष्ठा 'रोमानवाद' है। एक रोमानी कवि अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करने की न क्षमता रखता और न ही समझौता करने की। अपने चारों ओर से निश्चिन्त होकर वह अपने में एक नये ही संसार का सृजन करता है जिसमें उसके मीठे कड़वे अनुभव उसे प्रेरणा देते हैं। जीवन की दौड़ में वह जीत और हार के मीलपत्थर नहीं गिनता, अपनी साधना में मग्न होकर लक्ष्य-प्राप्ति के लिये भी उतना उत्सुक नहीं होता।

यद्यपि ऐसी कविता सम्पूर्ण जीवन की आलोचना नहीं हो सकती, फिर भी इसे संकीर्ण व्यक्ति-बोध कराने की छन्दोबद्ध रचना नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मानव की व्यक्तिगक्त अनुभूतियां विराट् से सम्बद्ध हैं, विश्वव्यापी गुण लिये हुए हैं; हब्बा की ही तरह लाखों ऐसी ललनायें उस समय भी रहीं होंगी जिन्होंने समाज के प्रताड़न को गाय की तरह सहन किया, हब्बा की तरह घर से भागी नहीं। हब्बा ने अपने दर्द को ऐसी करुण-मधुर भाषा का कलेवर पहनाया कि इस तरह उन लाखों निरीह अबलाओं का भी प्रतिनिधित्व हुआ।

लौकिक प्रेम-प्रधान गीतों का श्रीगणेश कश्मीरी साहित्य में हब्बा के द्वारा ही हुआ। उसका 'लोल'[1] वास्तव में लौकिक प्रेम का प्रतीक है। अतः इसका प्रणय-प्रतिपादन इन्द्रियातीत न होकर इन्द्रियजनित है। इन्द्रियसुख के प्रति हब्बा में कभी भी वितृष्णा पैदा नहीं हुई; भोग की परिणति उसके विचारानुसार योग में नहीं; वह मुड़ मुड़ कर उस भोग की प्राप्ति के लिये लालायित है जो उससे छिन चुका है। अपने भाग्य से उसे इसी लिये रोष है। सुहागिन होकर वह वियोगिनी

---

[1] *P. N. K. Bamzai, A History of Kashmir.*

बनने के लिये तैयार नहीं; वियोग में भी वह संयोग का मातम करती है; 'क्या खोया' यह तो उसके पद्यों की निरन्तर और अविच्छिन्न ध्वनि है। इतना सब करने के बाद भी आत्मतुष्टि नहीं अपितु व्यग्रता है, बेचैनी है; और इसी अधीरता का पुट उसके समस्त काव्य में मुखर हो उठा है। हब्बा को रंगीन और चांद-धुली रातों का एकान्त डसने लगता है, और वह हर समय अपने प्रीतम को अपने शारीरिक आर्कषण से पाना चाहती है, मनोबल उस के भाव-कोष में नहीं :

"दोयँ हरिँ रूपँ तन मलय
म्ये च्येन कल गनेयम ।
चन्दन वानि बोतन छलय
लालो कलँ आलवय ।।"[1]

"मैं अपने रुपहले शरीर पर उबटन मलूंगी, मुझे तुम्हारे बिन कल नहीं। मैं चन्दन के पानी से अपना शरीर धोऊंगी, हे प्यारे, तुम पर मैं अपना सिर निछावर करुंगी।

अतः प्रेम—प्रतिपादन के हेतु हब्बा के काव्य में रागात्मक तत्त्व बहुत प्रबल हो उठा है; यह रागात्मकता हब्बा के पद्यों की प्राण है, और इसमें यद्यपि वह आत्मविभोर हो उठती है परन्तु आत्मविस्मृति में खो नहीं जाती। इसी कारण उसकी लोकप्रियता आज तक बनी हुई है। संवेदनशीलता तो ऐसे काव्य में स्वतः सिद्ध होती है।

उसके काव्य पर फारसी काव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उसकी भाषा, भाव और शैली तो स्पष्टतः फारसी पद्धति के ऋणी हैं, और कहीं कहीं पर तो हब्बा अपने अतीत से इतनी कट चुकी है कि कश्मीरी नायक-नायिकाओं के बदले फारसी काव्यों में दिये गये नायक-नायिकाओं का ही उल्लेख करती है। 'यूसुफ' और 'जुलेखा' के बदले वह 'नागराय' और 'हीमाल' का प्रयोग कर सकती थी। कहीं कहीं पर तो फारसी शब्दों के ततसम रूपों के प्रति उसका मोह बहुत दिखाई देता है, जैसे 'शमा' के बदले वह कश्मीरी 'चोंग' अथवा 'परवाना' के बदले कश्मीरी 'पनपोंपुर' लिख सकती थी। सम्भवतः शिष्ट समाज में उस समय में फारसी-मिश्रित कश्मीरी का अधिक चलन रहा होगा।

हब्बा का यह करुण-मधुर विलाप वास्तव में कश्मीरी नारी की युग युग की प्यास का पद्यात्मक अनुवाद है और जब तक कश्मीरी ललना अपने अतीत से जीवन-

---

[1] हब्बा खातून--कल्चरल अकादमी।

श्वास ग्रहण करती रहेगी, तब तक हब्बा के गीत उसकी धड़कनों के साथ एकस्वर होते रहेंगे।

सम्भवतः इसी भाव से प्रेरित होकर स्व० महजूर ने अपने एक पद्य में स्व० रसूल मीर को उलाहना देते हुए हब्बा की गरिमा का आभार स्वीकार किया है :

शाहबादि रसूल मीर याद करान कन्दहारिच् ज़ून।
तमिस क्याज़ि छनि च्येतस प्यवान चन्द्रहारिचज़ून॥"

"रसूल मीर शाहाबादी अपने काव्य में बार बार कन्दहार के चांद को याद करता है (उस की उपमायें बांधता है); उसे क्यों चन्द्रहार की ज़ून (चांद) हब्बा याद नहीं आती ?"

इससे अधिक संश्लिष्ट, सारगर्भित श्रद्धाञ्जलि और क्या हो सकती है, और वह भी उस व्यक्ति के मुंह से जो आधुनिक कश्मीरी कविता का सर्वश्रेष्ठ रोमानी कवि हुआ हो।

●

बोल नि मेरिये बागें दिये कोयले।
बाग छोड़ी बन की चलिएं ?
बाबल मेरै वचन जे कीता,
बचना दी बद्दी दी में चलियां।

कहो ऐ मेरे बागों की कोयल ! तू इस बाग़ को छोड़ कर अनजाने वन की ओर क्यों जा रही है ?
मेरे पिता जी ने जो वचन दिया था, मैं उसी वचन की मजबूरी में बंधी हुई जा रही हूं।

डोगरी (सुहाग)—लोकगीत

एक कविता

● मोहन निराश

रस-रीती टहनियों वाला जाड़े का पेड़
मेरे एहसास में खिंच गया।
उस के ऊपर से अभी-अभी एक कव्वा
हवा को तार तार करके गुज़र गया।
और पास से एक गाड़ी गुज़र गई
कि इस का तना छिल गया।
अपने दादा के कंधे चढ़े
किसी बच्चे ने अपना सफ़ेद रंग का रूमाल
एक टहनी को झुका कर,
उसके सिरे में झंडी बन जाने के लिये वहीं छोड़ दिया,
और फिर दो क़दम आगे गये हुये दादा से
पीछे मुड़ के देखने को, कहने पर
पुकारता गया :
"शीना प्यतो प्यतो, मामा यितो यितो।"
और दादा
उस लहरते सफेद रूमाल में अमन के भाग्य की खोज
पोपले मुंह से दुहराता गया :
"शीना प्यतो प्यतो, मामा यितो यितो।"
और एक गाड़ी इन गुज़रते हुओं पर
दांत निपोरे हंसते हुये पास से गुज़र गई।
कव्वा एक नोचने लगा
बच्चे और बूढ़े के गूंजते संकल्प।
और मेरे एहसास में खिंचा रहा :
रस-रीति टहनियों वाला जाड़े का पेड़।
नज़रों में डूबता रहा...
सूरज :
"हंबोल" का तपा हुआ गोल गोल बड़ा बड़ा तांबे का पैसा।

●

हंसराज पंदोत्रा

डोगरी भाषा और प्रदेश

डोगरी का इस तरह अपनी विभिन्न बोलियों सहित एक भाषा के नाते अपना पृथक अस्तित्व है। डोगरी-पहाड़ी भाषा-भाषी प्रदेश का क्षेत्रफल ३३,००० वर्ग मील से कुछ अधिक बनता है, जिसकी जन-संख्या लगभग ५०,०००० है। इस प्रदेश के लोगों का कुछ अति प्राचीन जातियों से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, जिनमें प्राचीनतम हैं 'मद्राः' 'खशा' और 'टक्क'।

●

जम्मू-कश्मीर राज्य की प्रमुख भाषाओं में एक डोगरी भी है जिसे राज्य के संविधान में विशिष्ट क्षेत्रीय भाषा के नाते प्रतिष्ठित किया गया है। वास्तव में डोगरी-भाषी लोगों की गिनती रियासत के अन्य भाषा-भाषियों की अपेक्षा कहीं अधिक है। वह इस तरह कि अपनी विभिन्न विभाषाओं सहित डोगरी रियासत जम्मू कश्मीर के बाहर भी बोली जाती है।

उत्तर-पश्चिमी हिमालय की शिवालक पहाड़ियों की गोद में आबाद अनबंटे पंजाब के मस्तक पर अर्ध-चन्द्राकार बनाता हुआ, असंख्य नदी नालों से कटा-फटा, कुछ बरफीला, कुछ पत्थरीला पर्वतीय क्षेत्र भाषा-शास्त्रियों ने 'पश्चिमी-पहाड़ी' बोलियों का घर माना है। यद्यपि इस प्रदेश का प्राचीन और क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं हैं किन्तु यह सर्वमान्य है कि चिरकाल से यह देश समय समय पर क्रमशः

नाग, खश, टक्क, गुर्जर, कनेत, ठक्कर, डगोर अथवा डोगरा नाम से अभिहित लोगों की कर्मभूमि रहा है। इन्हीं लोगों के नाम पर इस क्षेत्र की भाषा और लिपि का नामकरण हुआ है। मद्र देश, टक्क देश, त्रिगर्त, जम्बू इत्यादि इसके प्राचीनतम नाम पड़ते हैं, जिनका उल्लेख पुराणों और महाभारत में भी आया है, जबकि दुर्ग्याढ़ा, द्विगर्त, डुग्गर, हिमाचल कोट-कांगड़ा आदि इस क्षेत्र के कुछ सीमित और आधुनिक नाम प्रतीत होते हैं। डोगरी इस क्षेत्र की एक प्रमुख, सर्वाधिक, विकसित एवं बहुभाषित बोली है, जिसने अपेक्षित विशिष्टताओं के कारण अपने लिए भाषा की पदवी अर्जित की है। मूलतः यह एक पहाड़ी बोली है किन्तु कतिपय भाषाविद इसे शौरसेनी प्राकृतों की एक स्वतन्त्र आत्मजा मानते हैं।

पहाड़ी विभाषाओं का वर्गीकरण :

नेपाल से लेकर पुंछ तक हिमालय के कटिबन्ध प्रदेश में बोली जाने वाली बोलियों को सर्वप्रथम 'पहाड़ी' अथवा 'पर्वतीया' नाम देने वाले श्री बेन्ज़ हैं। उन्होंने इन बोलियों को तीन वर्गों में बांटा है, यथा 'पूर्वी पहाड़ी', 'मध्य पहाड़ी' और 'पश्चिमी पहाड़ी'। 'पूर्वी पहाड़ी' का क्षेत्र नेपाल राज्य है। इसे 'गोरखाली' 'नेपाली' अथवा 'खसकुरा' भी कहते हैं। नेपाली का अपना थोड़ा बहुत साहित्य भी है। 'मध्य पहाड़ी' के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश की 'गढ़वाली' तथा 'कुमाऊनी' बोलियां आती हैं। इनका कोई विशेष लिखित साहित्य प्राप्त नहीं है। ये हिन्दी से बहुत प्रभावित हैं। हमारे अध्ययनगत 'पश्चिमी पहाड़ी' विभाषाओं का क्षेत्र देहरादून के जौनसर-बावर इलाका से लेकर जम्मू प्रान्त की तहसील पुन्छ तक फैला हुआ है। यह क्षेत्र ५ से २० मील तक की चौड़ाई में पंजाब के ऊपरी या मैदानी इलाका को भी अपने में समो लेता हैं। 'डोगरी' इसी 'पश्चिमी पहाड़ी' वर्ग की वरद पुत्री है।

भाषायी परिधि :

पूर्व में गढ़वाली और कुमाऊनी से घिरी हुई 'पश्चिमी पहाड़ी-बोलियों' का उत्तर दिशा में तिब्बती-वर्मीय विभाषाओं से संघात होता है। पश्चिमोत्तर में पीर-पंजाल श्रृंखला इनको अर्ध-आर्य एवं अर्धदरद तथा पैशाची परिवार की बोलियों से पृथक करती है, जिनमें प्रमुख कश्मीरी, शिना और 'बल्ती हैं। पश्चिमी पहाड़ी भाषा-भाषी के क्षेत्र दक्षिण-पश्चिम में 'लहंदा' (पंजाबी) और ठीक दक्षिण में 'स्तरीय पंजाबी' बोली जाती है। दक्षिण-पूर्व में पहले 'माझे की पंजाबी' से और किंचित परे हट कर अम्बाला डिवीज़न की हिन्दी (हरियानी) से 'पश्चिमी-पहाड़ी' को होढ़ लेना पड़ती है।

पश्चिमी पहाड़ी भाषा क्षेत्र :

अतैव, पूर्वोक्त परिधि में जम्मू कश्मीर राज्य का लगभग समूचा जम्मू प्रान्त (मीरपुर ज़िला छोड़कर), पंजाब की कुल्लू-कांगड़ा घाटी, गुरुदासपुर तथा हुशियारपुर ज़िलों के पहाड़ी इलाके एवं हिमाचल प्रदेश की भूतपूर्व देसी रियासतों—चम्बा, मंडी-सुकेत, विलासपुर और शिमला हिल स्टेट्स सहित एक बहुत बड़ा भाग आ जाता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी पाकिस्तान की डफरवाल तथा शकरगढ़ तहसीलों एवं स्यालकोट के इलाका बजवात में भी डोगरी बोली जाती है। इस लिए यह इलाके भी पश्चिमी पहाड़ी भाषा-भाषी प्रदेश में शामिल किए जा सकते हैं।

डोगरा-पहाड़ी :

एक तीन मंज़िला घर

राजनीतिक दृष्टि से 'पश्चिमी पहाड़ी विभाषा प्रदेश' तीन राज्यों में बंटा हुआ है। पीछे भी चिरकाल से कोई प्रमाण नहीं मिलता कि यह समूचा क्षेत्र कभी बहुत देर तक एक ही राज-नीतिक इकाई के रूप में स्थिर रहा हो। ब्रिटिश राज्य-काल में तो यह लग-भग तीन दर्जन छोटी मोटी रियासतों में विभाजित था। इस लिए इस भू-भाग में उतनी ही बोलियों का प्रचलित होना कोई अस्वभाविक वात नहीं, जितनी कि भारत विभाजन से पूर्व इस प्रदेश की रियासतों और जागीरों की संख्या थी। भौतिक दृष्टि से इस पर सारे प्रदेश को एक तीन मंज़िले पहाड़ी मकान से उपमा दी जा सकती है। समुद्रतल से एक-डेढ़ हज़ार फुट की ऊंचाई पर इसका प्रांगन पंजाब के मैदानों से सिमटा हुआ है। दूसरी मंज़िल डेढ़-दो से चार हज़ार फीट तक चली जाती है। और इसकी ऊपरली मंज़िल छः सात हज़ार फीट तक उठी हुई है। इस घर की ज्यों ज्यों सीढ़ियां चढ़ते जाइए, वहां की भाषा में आदि-तत्व, प्रयत्न-लाघव, यदृच्छा और मुख-सुख इत्यादि भाषा विकारों की वृद्धि होती जाती है। तथैव 'पश्चिमी पहाड़ी बोलियों को भी निम्नोक्त तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

पश्चिमी पहाड़ी बोलियों का वर्गीकरण :

क—उत्तरीय सीमान्त बोलियां :— { भद्रवाही, भलेसी, पोगली, सिराजी, बुशहरी, भरमौरी, पंगावली, गादड़ी, बग्घाली, चुराही, कुल्लुई, क्योंथली, सरमौरी, जौनसरी।

ख—मध्यवर्ती पश्चिमी प्रदेश की बोलियां :— बल्वालती (बन्दराली), टेकरी-पहाड़ी, चम्बयाली, जमवाली, भड़वाली, शाहपुरी, मंडयाली, विलासपुरी, उच्च कांगड़ियाली अथवा डोगरी ।

ग—मैदानी सीमान्त बोलियां :— सिद्धड़ी, बजवालती, चिबाली, कंडयीली, भतियाली निम्न-कांगड़ी ।

प्रतिनिधि रूप डोगरी :

पूर्वोक्त 'पश्चिमी पहाड़ी विभाषा समूह' के प्रतिनिधि के रूप में इस प्रदेश की भाषा को 'डोगरी' नाम से ही अभिहित करेंगे । कारण कि 'डोगरी' इस क्षेत्र की सभी बोलियों व उपबोलियों की अपेक्षा बहु-भाषित ही नहीं, सम्पन्नतम और प्रगतिशील भी है । यह इस प्रदेश की सभी बोलियों का गम्भीर सम्मिश्रण लिए हुए है, जिसके लिए इसका शब्द भंडार प्रमाणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है, वाक्य रचना और व्याकरण भी । 'डोगरी' ही इस समुदाय में से साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी है । जम्मू और चम्बा में इसे राज्य भाषा का पद प्राप्त रह चुका है । आज भी जम्मू प्रान्त में डोगरी को प्राइमरी कक्षाओं के लिए शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया है । पश्चिमी पहाड़ी भाषा-भाषी प्रदेश के एक बहुत बड़े भाग को आज भी 'डुग्गर' अथवा 'डोगरादेस' कहा जाता है । जिसके वासियों की बहुसंख्या अपने मुंह से अपनी मातृभाषा का नाम प्रायः 'डोगरी' ही बताएगी । अल्बत्ता उत्तरी-सीमान्त क्षेत्रों अथवा ऊपरली मंज़िल के लोग अपनी उपबोलियों को 'पहाड़ी' नाम देंगे । किन्तु कोई भी 'पश्चिमी पहाड़ी' का नाम नहीं लेगा । बहुत से तो अपनी बोली का नाम ही नहीं बता पायेंगे । यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि 'पश्चिमी पहाड़ी' केवल इस प्रदेश की बोलियों, उपबोलियों का सामूहिक, परिभाषिक तथा केवल ग्रंथगत नाम है । इसे केवल 'पहाड़ी' कहना भी भ्रान्ति-मूलक होगा । अस्तु इस प्रदेश के एक बड़े भाग की विभाषा के नाम से जो सर्व-सम्पन्न भाषा कहाने का अधिकार रखती है, इस सारे प्रदेश की भाषा को हम 'डोगरी' संज्ञा देते हैं । इस प्रकार पश्चिमी पहाड़ी बोलियों के पूर्वोक्त वर्गीकरण को यूं भी प्रकट किया जा सकता है :— (क) अविकसित डोगरी, (ख) स्तरीय डोगरी तथा (ग) मिश्रित डोगरी । यह आकृति-मूलक वर्गीकरण माना जाना चाहिए ।

डुग्गर प्रदेश के लोग :

डोगरी का इस तरह अपनी विभिन्न बोलियों सहित एक भाषा के नाते अपना पृथक अस्तित्व है । डोगरी-पहाड़ी भाषा-भाषी प्रदेश का क्षेत्रफल ३३,००० वर्ग मील से

कुछ अधिक बनता है, जिसकी जन-संख्या लगभग ५०,०००० है। इस प्रदेश के लोगों का कुछ अति प्राचीन जातियों से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, जिसमें प्राचीनतम हैं 'मद्राः', 'खश' और 'टक्क'। कुछ देर बाद गुर्जर भी इस क्षेत्र पर कभी अधिकृत रहे होंगे, इसके प्रमाण हमें आज भी उपलब्ध होते हैं। इनका अपने पूर्वजों के प्रदेश में प्रत्यागमन का इतिहास सात-आठ सौ सालसे पुराना नहीं। इस प्रदेश की आधुनिक सभी रियासतों के शासक प्रायः यही राजपूत रहे हैं। इन राजपूतों के डोगरा-पहाड़ी-प्रदेश (शिवालक) में शरणागत होने को डा० भंडारकर और डा० ग्रियर्सन ने अपने पूर्वजों के प्रदेश में प्रत्यागमन की वार्ता कहा है। उनका कहना है कि 'टक्क' लोगों के बाद छठी शताब्दी में 'गुर्जर' नाम के एक कबीले ने भारत में प्रविष्ट हो कर पहले पहले शिवालक-क्षेत्र को अपना घर बनाया और वहां से फैलते फैलते राजस्थान में जा धमके। राजस्थान इत्यादि प्रदेशों में गुर्जरों ने अपने बहुत से राज्य स्थापित कर लिए और अपने क्षात्रधर्म के आधार पर क्षत्रिय माने जाने लगे। बहुत अर्से बाद इन्हें मुसलमान आक्रान्ताओं का सामना करना पड़ा। उन दिनों हमलों के बढ़ते हुए दबाव से तंग आकर गुर्जर-क्षत्रियों ने जो तब तक अग्निकुल यज्ञ के कारण राजपूत बन चुके थे, पुनः हिमालय के अंक में स्थित क्षेत्रों की ओर रुख किया और वहां अपने छोटे छोटे राज्य स्थापित कर लिए। सिरमौरी राजकुल का जैसलमीर से, बघाल वालों का उज्य्यन, जम्मू और कांगड़ा के राजपूतों का अपना उद्भव जयपुर तथा जोधपुर से बताना पूर्वोक्त कथन को प्रमाणित करता है। इसी तरह हमारे पहाड़ी क्षेत्रों में परमार, परिहार, चौहान इत्यादि कुलों का विद्यमान होना भी इसी बात की पुष्टि करता है। राजपूतों के अलावा अन्य वर्णों के तथा अन्य प्रदेशों के लोगों ने भी समय समय पर डोगरा-पहाड़ी क्षेत्र में जाकर शरण ली है। कश्मीर, उत्तर प्रदेश, तिलँगाना और महाराष्ट्र के ब्राह्मणों, पंजाब के क्षत्रियों, मुलतान के अरोड़-वंशियों के भी चिन्ह यहां उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त मण्डी-सुकेत और क्योंथल के राजबाड़े अपनी वंशावली बंगाल से जोड़ते हैं और बुशहर तथा चम्बा के राजकुल अपने पूर्वजों को क्रमशः बनारस और अवध से आया बताते हैं।

डोगरी की लिपि—टाकरी

डोगरी व पश्चिमी पहाड़ी की शेष सभी विभाषाओं की अपनी एक सांझी लिपि है, जिसे विभिन्न विद्वानों ने टाकरी, टक्करी अथवा टांकरी इत्यादि नाम दिया है। स्थानीय उच्चारणों में से बहुधा 'टाक्करे अख्खर' कहा जाता है। भारतीय आर्य व अनार्य बोलियों का सर्वप्रथम सर्वेक्षण करने वाले मेधावी भाषाचार्य डाक्टर ग्रियर्सन से डोगरी भाषा की लिपि का 'डोगरा अक्षर' नामकरण करते हुए कहा है कि यह लिपि पंजाब के हिमालय-क्षेत्र में प्रचलित 'टाक्करी' अथवा 'टांकरी' लिपि से मिलती-जुलती है।

डाक्टर महोदय का यह आलेख उस समय का है जबकि तत्कालीन जम्मू कश्मीर नरेश स्व० महाराजा रणवीर सिंह ने प्रचलित 'टांकरी' में अपनी सुविधा और सूझ के अनुसार सुधार करके उसे 'देवनागरी' के अधिक समीप लाने के सुप्रयत्न करने शुरू किए थे। अन्यथा जम्मू, चम्बा, मण्डी-सुकेत, कुल्लू और रामपुर की 'टांकरी' लिपियों में कोई भेद विशेष नहीं है।

टक्क जाति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

संयोगवश 'टाक्करी' लिपि और उसका नाम हमारे अध्ययनगत पहाड़ी प्रदेश के एक ऐसी आदिवासी जाति की देन प्रतीत होती है जिसका कभी केवल इसी प्रदेश पर ही नहीं, बल्कि पंजाब के मैदानों पर भी प्रभुत्व रहा है, ये लोग 'टक्क' नाम से विख्यात हैं। महाभारत में अनेक सीमान्त कबीलों का उल्लेख आया है, जिन्हें वाहिकाः भी कहा गया हैं। 'टक्क' और 'खश' लोगों के विषय में लिखा है कि एक बार इन्होंने सीथियनों (शकों) से मिल कर मथुरा के महाराज श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया था और यह जन 'वाहिकों' में गिने जाते थे।

ह्यूनत्सांग ने भी अपने सफ़रनामे में 'टक्क-देश' का जिक्र किया है। चीन से आए हुए इस महाप्रयूर्यटक ने राजपुरी (राजौरी, जम्मू प्रान्त) से आगे बढ़कर दो दिन की यात्रा के बाद एक नदी (सम्भवतः चन्द्रभागा) पार की ओर वह एक मन्दिरों की नगरी (सम्भवतः जम्मू अथवा अखनूर) से होता हुआ 'सकला', जिसे डा० फ्लीट ने आधुनिक स्यालकोट कहा है, में प्रविष्ट हुआ। इस वर्णन के आधार पर रावी और चनाब के मध्यवर्ती देश को 'टक्क' जाति की धरती माना गया है। यह प्रदेश इस से पूर्व वैदिक-पौराणिक-काल से 'मद्र देश' का एक भाग था। 'टक्क' बड़े शक्तिशाली लोग थे और कभी सारे पंजाब भर में उनका सिक्का चलता था। तब उनका प्रभुत्व पंजाब की पहाड़ी रियासतों और वर्तमान हिमाचल प्रदेश तक प्रसारित हो चुका था। इन लोगों ने जो लिपि प्रयुक्त की वह टांक्करी नाम से प्रसिद्ध हो कर उत्तर-पश्चिमी भारत में सर्वत्र प्रचलित हो गई। आज भी सतलुज-व्यास से लेकर चन्द्रभागा के आर-पार तक के क्षेत्र में जिसे हम डोगरी पहाड़ी भाषा क्षेत्र कहते आए हैं, यह टांक्करी इस्तेमाल की जाती है। मुख-सुख प्रवृत्ति के कारण इसके उच्चारण रूप भी विविध हो गए हैं। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा (६०० ई०) में इसे 'ढक्क' लिखा है। 'टङ्कण' लोगों के नाम पर जो हिमालय की तराईयों में रहते थे, सम्भवता यह लिपि 'टँक' या 'टाँकरी' कहलाई।

'टक्क' और 'शारदा' लिपियां

कई विद्वानों का मत है कि पश्चिमी पंजाब की 'लहंदा' (लंडे) लिपि की जन्म-दात्री 'टाक्करी' ही है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार कश्मीर की 'शारदा' लिपि 'टाक्करी'

का ही संस्कृत रूप है और वह इसी से विकसित हुई है, जैसे कि 'लहंदा' का परिष्कृत रूप आज की 'गुरुमुखी' है। डा० ग्रियर्सन, श्री वुहलर की इस बात से सहमत नहीं कि 'टाकरी' का उद्भव-विकास 'शारदा' से हुआ है।

यह 'ठक्कर' कौन हैं ?

पूर्वोक्त प्रसंगों से प्रतीत होता है कि 'टक्क' जाति यवनों (ग्रीकों) से पहले भारत में आबाद थी। शकों (सीथियन्ज़) की वह समकालीन थी और 'खश' कबीले की पड़ोसिन थी। 'टक्क' कबीले ने आगे जाकर क्या क्या रूप धारण किए अथवा किन अन्य जातियों में यह लोग स्वयं विलीन हो गए, इस सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु डोगरों में आज भी जो एक उप-जाति 'ठक्कर' नाम से विद्यमान है, उसे 'टक्क' जाति का अवशेष कहा जा सकता है। राजतरंगिणी में कश्मीर के दक्षिण में सीमावर्ती पहाड़ी राजाओं में बहुतों को 'ठक्कर' अथवा 'ठाकुर' कहा गया है। 'टक्करों' को एवं 'ठक्कर' उपनाम को कितनी देर तक राजपूतों ने अंगीकार नहीं किया। ऐसा मालूम होता है 'ठक्कर' इस प्रदेश के आदि-वासियों में से हैं।

'टक्क' और 'खश' कबीलों का प्रसार :

इतिहास इस बात की भी पुष्टि करता है कि 'शिवालक क्षेत्र' में 'टक्कों' के साथ 'खश' लोग भी मौजूद थे। महाभारत में उनके नाम की चर्चा के अलावा प्राचीन वैयाकरणों ने 'खश' और 'टक्क' अपभ्रंशों का भी उल्लेख किया है। किन्तु 'खश' अपभ्रंश के उदाहरण उपलब्ध नहीं हैं। इस लिए कहा नहीं जा सकता कि पहाड़ी बोलियों में 'खश तत्व' किस मात्रा में मिला हुआ है। 'खश' शब्द बदलता बदलता 'खशीर' 'काशिर' और फिर 'कश्मीर' बन गया। इस आधार पर कई विद्वानों का मत है कि दूर-उत्तर और उत्तर-पश्चिमी व पूर्वी हिमालय के अंक में कश्मीर से लेकर नेपाल तक 'खश' जाति का बोलबाला था और इस सारे प्रदेश की बोलियों में जो थोड़ा बहुत सादृश्य है, वह 'खश' प्राकृतक' के माध्यम से है। यह युक्ति पंजाब सहित इस सारे प्रदेश की लिपियों की जन्मदाता 'टाक्करी' सिद्ध करने के लिए दी जा सकती है। जम्मू प्रान्त का इलाका भद्रवाह, जोकि कश्मीरी भाषा-भाषी क्षेत्र के साथ मिलता है, के लोगों को आज भी 'खश' नाम से पुकारा जाता है। इसी तरह पूर्व में नेपाल की भाषा का 'खस-कुरा' नाम 'खश' प्रभाव का परिचायक है। सम्भवतः 'खश' कबीला 'दारद' कबीले के दबाव से भद्रवाह के रास्ते हिमालय के दामन में पूर्व की ओर फैलना शुरू हुआ। बीच में कहीं से 'टक्क' लोगों ने उनके प्रसार सूत्र को काट दिया और निचले भागों में स्वयं अधिकार

जमा लिया। इस तरह 'खश' तत्व डोगरी पहाड़ी भाषा के पूर्वोक्त प्रथम आकृतिमूलक वर्ग में ही रह गया और धीरे धीरे सिकुड़ता सकुचाता कश्मीर, हिमाचल के ऊंचे क्षेत्रों तथा नेपाल की सीमाओं का दास बनकर रह गया। इस भीतर 'टक्क' पर्याप्त शक्तिशाली हो गए और उन्होंने अपनी लिपि प्रचलित कर दी जिससे बाद में शारदा और लहंदा अथवा गुरुमुखी लिपियां विकसित हुईं।

डोगरा शब्द की व्युत्पत्ति :

टाक्करी लिपि में लिखी जाने वाली बोली का नाम डोगरी कैसे हुआ, इसका विश्लेषण करना कम रुचिकर न होगा। स्पष्ट है कि पश्चिमी पहाड़ी भाषा क्षेत्र के एक बहुत बड़े भाग को जो ऐतिहासिक कारणों से ख्याति प्राप्त हुई, डोगरा अथवा डुग्गर नाम दिए जाने से, उसकी भाषा को डोगरी कहा जाने लगा। अस्तु डोगरा शब्द की व्युत्पत्ति का इतिहास जानने से हमारी समस्या हल हो सकती है।

स्थानीय लोक वार्ता :

एक प्रचलित वार्ता के अनुसार, जिसका उल्लेख 'इम्पीरियल गज़ेटियर आफ इण्डिया' में भी आया है, 'डुग्गर' शब्द संस्कृत के 'द्विगर्त' का विकृतरूप माना गया है। जम्मू नगर से कुछ दूर पूर्वोत्तर में 'सरूईं-सर' और 'मानसर' दो झीलें हैं। इन दो 'सरोवरों' अथवा 'गर्तों' की भूमि को 'द्विगर्त' कहा जाने लगा। 'द्विगर्त' से बिगड़ कर 'डुग्गर' नाम से यह क्षेत्र विख्यात हुआ और इसके निवासी 'डोगरा' कहलाए।

एक विश्वास यह भी है कि इस क्षेत्र को पहले 'दुर्ग्याढ़ा' कहा जाता था। हो सकता है इस क्षेत्र में 'दुर्गों' और 'गढ़ों' की बहुलता के कारण इसे किलों से भरपूर देख 'दुर्ग्याढ़ा' नाम दिया गया हो। यह शायद भाषा-परिवर्तन के चक्कर में पड़कर 'दुर्ग्याढ़ा' और फिर 'डुग्गर' बन गया।

राजतरंगिणी में डुग्गर :

'राजतरंगिणी' के विख्यात अनुवादक व टिप्पणीकार सर-ऑरिल स्टीन के अनुसार इस देश का प्राचीनतम नाम 'दुर्गर' अर्थात दुर्गम्य प्रतीत होता है, जिस का प्राकृत के माध्यम से 'डोग्गर' अथवा 'डुग्गर' रूप बना। उन्होंने अपना यह निष्कर्ष डॉ० कीलहॉर्न द्वारा चम्बा से प्राप्त और प्रकाशित एक ताम्रपत्र पर आधारित किया है। यह बड़े अचम्भे की बात है कि कल्हणकृत कश्मीर के विशद् इतिहास—राजतरंगिणी में 'डुग़र' या 'डोगरा' शब्द का कहीं भी ज़िक्र नहीं आया है। अल्वत्ता आधुनिक जम्मू-प्रांत का 'मद्रः', 'दार्व-अभिसार' एवं कांगड़ा का 'त्रिगर्त' के नाम से चोखा उल्लेख मिलता है।

त्रिगर्त का अर्थादेश :

एक और मतानुसार 'त्रिगर्त' (जिस का एक विशाल राज्य के रूप में पुराणों में बखान आया है) के अर्थादेश के आधार पर 'द्विगर्त' नाम गढ़ा गया होगा। अस्तु, चनाब, रावी, व्यास और सतलुज द्वारा सिंचित तीन भूखण्डों (तीन दोआबों) पर सम्मिलित 'त्रिगर्त राज्य' जब सिकुड़ता-सिकुड़ता जालंधर क्षेत्र से छूट कर वर्तमान कांगड़ा में सीमित हो गया तो 'व्यास' और 'रावी' एवं 'रावी' और 'चनाब' नदियों के मध्यवर्ती दो भूखण्डों को सामूहिक संज्ञा 'द्विगर्त' अथवा 'डुग्गर' दी गई। यह 'अर्थादेश' संभवत: १०-११वीं शती में लागू किया गया, तभी राजतरंगिणी के लेखक को 'द्विगर्त' या 'डुग्गर' नामक क्षेत्र का ज्ञान प्रतीत नहीं होता।

भाषा-विज्ञान की कसौटी :

'डोगरा' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में उद्‌धृत उपरोक्त मत भाषा विज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। 'डोगरी' भाषा की यह प्रवृत्ति नहीं कि इसमें 'द' का विकृतिकरण हो कर 'ड' रूप बन जाए। तथैव 'द्वि' का डोगरी रूपान्तर 'दौ' या 'दो' एवं 'गर्त्त' का 'गत्त' बनता है। इस लिए 'द्विगर्त' से 'डुग्गर' शब्द बनने की संभावना अधिक नहीं।

राजस्थानी शब्द बनाम लद्दाखी शब्द 'डोंगरी' :

कुछ विद्वानों का विचार है कि 'डोगरा' शब्द राजस्थानी शब्द 'डोंगर' का ही रूपान्तर है। राजस्थान के राजपूतों को नित-आए आक्रमणों से हताहत हो कर जब शिवालक पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी, तो पहाड़ियों पर जा बसने वालों को 'डोंगर' कहा जाने लगा। क्योंकि राजस्थान में 'डोंगर' पहाड़ी को कहते हैं। बुन्धेलखण्ड में भी पहाड़ी को 'डूंगर' कहा जाता है। किन्तु लद्दाखी भाषा का 'डोंगरी' शब्द पूर्वोक्त मत की प्रमाणिकता को संदिग्ध कर देता है कि 'डोगरा' शब्द राजस्थानी के शब्द 'डोंगर' या 'डूंगर' से बिगड़ या संवर कर बना है। लद्दाखी में 'डोंगरी' कहते हैं, 'दूसरे घर' को जोकि वहां के लोग गर्मियों में अपनी बस्ती से बाहर जाकर अस्थाई वास के लिए बना लेते हैं। हां, इस शब्द से 'डोगरी' की 'दारद' से व्युत्पत्ति की युक्ति को पुष्टि अवश्य मिलती है।

ईसा की पहली शती के ग्रीक विद्वान का मत :

'डुग्गर' नाम की प्रामाणिकता परखने के लिए ग्रीक-विद्वानों द्वारा रचित प्राचीन भारत के मान-चित्रों और आख्यानों से भी सहायता मिलती है, जिन की ओर इस अभिप्राय से अभी तक हमारा ध्यान नहीं गया था। १०५ ई० में प्रख्यात ग्रीक

ज्योतिषाचार्य प्टोलिमी ने भारत के चित्र में सेरिके (Serike) तथा इथागौरोइ (Ithagouroi) नाम के दो पहाड़ी-राज्यों का उल्लेख किया है। उसने इन राज्यों की जो भौगोलिक स्थिति वर्णन की है, तदनुसार 'सेरिके' शिवालक (शपदालक्ष) पहाड़ियों की गोद में स्थित वही क्षेत्र प्रतीत होता है, जिसे आज 'डुग्गर' अथवा 'डोगरा देस' कहा जाता है। 'प्टोलिमा' के समीक्षक सेण्ट मारटन इस क्षेत्र में उन दिनों आबाद लोगों का नाम डगोर, डंगोर, ढगार, डखार (Dagors, Dangors, Dhagaras, Dakharas etc.) इत्यादि वर्गित करते हैं। वह आगे लिखते हैं कि "इस सीमान्त लोगों पर अवश्य ही दारद या दार्द कबीले का प्रभुत्व रहा होगा जैसा कि इन की भाषा से प्रगट होता है।" हमारे अपने विचार में प्रसंगाधीन जाति पर जिस 'दारद' प्रभाव का उल्लेख सेण्ट मारटन ने किया है, वह 'खश' कबीले के द्वारा इस देश तक पहुंचा, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। 'टक्क' देश की बोलियों पर शायद ही कभी 'दारद' का सीधा संघात हुआ हो।

शौरसेनी परिवार :

'डोगरा' शब्द की यह व्युत्पत्ति जहां इस प्रसंगानुसार अधिक प्रामाणिक, युक्तियुक्त और प्राचीनतम प्रतीत होती है, वहां 'डोगरी' भाषा के विकास को जानने में भी सहायक है। यद्यपि 'डोगरी' अपने आदिकाल से शौरसेनी परिवार की हो चुकी है किन्तु आज भी 'खश' और 'दारद' प्रभाव का उसमें नितान्त अभाव नहीं। डोगरी को कश्मीरी से सर्वथा भिन्न और पंजाबी से दूरस्थ स्वतन्त्र-भाषा सिद्ध करने में यह तथ्य बड़ा महत्वपूर्ण है। भाषाविद पद्मश्री डा० सिद्धेश्वर वर्मा डोगरी को एक स्वाधीन और सीमान्त (सरहदी) बोली मानते हैं, जिसने कि अपने लिए सम्पूर्ण भाषा की उपाधि अर्जित कर ली है। वह डा० ग्रियर्सन के इस मतसे सहमत नहीं कि डोगरी को पंजाबी की एक विशिष्ट-विभाषा मात्र माना जाए।

आर्य भाषा परिवार :

श्री जान बीम्ज़ ने १८६६ में प्रकाशित अपनी पुस्तक भारतीय 'भाषा-विज्ञान की रूप-रेखा' में इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि यह न तो कश्मीरी की देनदार है और न पंजाबी का रूपान्तर मात्र है, डोगरी को भारतीय-जर्मन परिवार की आर्य-शाखा की ग्यारह भाषाओं में स्थान दिया है।

अपनी इस भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक परम्परा और नसली पृष्ठभूमि के कारण हम देखते हैं, डोगरी केवल 'खश' 'पेशाची' और 'दारद' बोलियों से ही नहीं, बल्कि पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी से भी समय समय पर प्रभावित होती रही है। यह आदान-प्रदान, वास्तव में, भारत क्या हर एक देश की भाषाओं में चलता आया है और कोई भी भाषा अपनी मूल विशुद्धता का दावा नहीं कर सकती।

डोगरी का भविष्य :

डोगरी अब तक पर्याप्त लिखित साहित्य गद्य, पद्य, कविता, उपन्यास, कहानी तथा नाटक इत्यादि से सम्पन्न हो चुकी है। इसका आधुनिक साहित्य किसी भी भारतीय बोली की तुलना में रखा जा सकता है। इसका कुछ प्राचीन साहित्य अभी भी इसकी अपनी लिपि 'टाक्करी' में उपलब्ध है। डा० बुह्लर ने संस्कृत के लीलावती नाम के गणित-ग्रन्थ का डोगरी रूपान्तर देखने का उल्लेख किया। इसी प्रकार कुछ प्राचीन शिलालेख और बाइबल के डोगरी अनुवाद भी प्राप्त हुए हैं। टाक्करी लिपि का यद्यपि प्रचलन सर्वथा मिट नहीं गया, किन्तु राष्ट्रीय एकता की खातिर देवनागरी का इसके स्थान पर प्रचुर प्रयोग हो रहा है। डोगरी को, जो कभी जम्मू और चम्बा इत्यादि रियासतों में राज्य-भाषा पदासीन रही है, जम्मू प्रान्त में शिक्षा के माध्यम (प्राइमरी स्टैंडर्ड) के रूप में अपनाने का सफल परीक्षण हो रहा है। जिस गति से डोगरी का पुनरुत्थान हो रहा है, वह इसके समृद्ध भविष्य की साक्षी है। अब जम्मू कश्मीर यूनिवर्सिटी ने डोगरी में योग्यता प्राप्ती की परीक्षा व्यवस्था आरम्भ कर दी है। इस परीक्षा का नाम 'तिलक' है।

हमारा पूर्वगत अध्ययन केवल ऐतिहासिक एवं भौगोलिक तथा मानवीय कथ्यों पर आधारित है, जिस की पुष्टि व्याकरण और भाषा-शास्त्र के आधार पर भी की जा सकती है कि 'डोगरी' एक सम्पूर्ण, स्वाधीन और सम्पन्न भाषा है।



महान भाषाओं की परम्परा

...हमारे लिए यह परम सौभाग्य और गर्व की बात है कि भारत में अनेक महान भाषाएँ हैं और वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। हमें इन सभी भाषाओं को समृद्ध बनाना चाहिए तथा अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के प्रति विरोध की भावना नहीं रखनी चाहिए। सभी भाषाएं युगों-युगों से विकसित हो कर भारत की मिट्टी में ही पनपी और बढ़ी हैं। इनमें से किसी एक भाषा की क्षति सारे भारत की क्षति है...

—जवाहर लाल नेहरू

गीत

● चन्द्रकान्त जोशी

बेदाग़ बचा है दुनिया में, कोई भी एक बशर देखो।
चिर-प्यास जलन की अधरों पर, ललचाई लाज नज़र देखो॥
केसर की साड़ी में लिपटी,
कमलों के चांद लगाये सी।
यह शिखा हृदय की ललक उठी,
जोगिन बन अलख जगाये सी।
हैं बहुत झुके, मधु फूल गुलाबी, सेवों की अरूणायी भी।
ललक लगी जिस को सिन्दूरी, बहकाया नाज़ शजर देखो॥
बेदाग़ बचा है दुनिया में, कोई भी एक बशर देखो।
रस लीची सा इक गीत सुना,
या पके शगूफे शाली के।
मल्हार छेड़ किसी ने धीमी,
अरमान छू लिये माली के।
है दूर गांव में शहनाई बजती, दुल्हिन का सिंगार किये।
दो दिन की सन्ध्या रंगीली, फिर बजता प्रात गजर देखो॥
बेदाग़ बचा है दुनिया में, कोई भी एक बशर देखो।
बादामी आंखों की कस्में,
इस के डोरे हैं लाल लाल।
इन चितकबरे मेघों से कह दो,
क्षण भर रोकें मस्त चाल।
उड़ते होंगे वह राज हंस, बिछुड़ा है जिन से मान सरोवर।
वह हार गई मोती चुन चुन, सांसों से उठती एक भंवर देखो॥
बेदाग़ बचा है दुनिया में, कोई भी एक बशर देखो।
नागों का धर्म वही डसना,
काली लट भी डस जाती है।
पड़ी कहीं पर वे बस मछली,
रूप नयन में बस जाती है।
बिखरे पत्ते, बिखरा मौसम, ऋतु का यह पहरावा है।
गीतों के अमर हिमाचल से, बहता सा तरल शिखर देखो॥
बेदाग़ बचा है दुनिया में, कोई भी एक बशर देखो।

●

भारतीयता के प्रतिनिधि महाकवि कालिदास

● प्रो० देवरत्न शास्त्री

कालिदास भारत और भारतीयता के प्रतिनिधि महाकवि हैं। महाकवि वह है, जो भूत वर्तमान और भविष्यत् का स्पष्ट द्रष्टा हो, जो त्रिकालज्ञ हो; जिसकी वाणी तथा रचनायें देश व राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हों, जिसकी वाणी के द्वारा, जिसके साहित्य के माध्यम से, राष्ट्र युगों तक अपना सन्देश विश्व को देता रहे। कालिदास ऐसे ही महाकवि हैं। उनकी रचनाओं में हमें विशुद्ध भारतीयता की झलक मिलती है। तपोवन से राजमहल तक, मानव से दानव तक तथा रणचण्डी के दानव-नृत्य से पायल की झंकार तक कवि की कल्पना ने दौड़ लगाई है और सब से सार लेकर भारतीय समाज का वह चित्र प्रस्तुत किया है जो सदियां बीत जाने पर भी हमारे लिये स्पृहणीय बना हुआ है।

कालिदास का युग राजा-महाराजाओं का युग था। कालिदास स्वयं राजा के आश्रय में रहते थे। सामान्य कवियों की तरह उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा के झूठे सच्चे गुणों की प्रशंसा नहीं की। वास्तविक कवि ऐसा कर भी नहीं सकता। जिस अमर सौंदर्य भावना से कविता का जन्म हुआ है, वह किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, मानव मात्र की सम्पत्ति है।

भारतीय सभ्यता ने अराजकता को कभी पसन्द नहीं किया। कालिदास ने इस तथ्य को मूलरूप में स्वीकार करते हुए भी अपनी रचनाओं में ऐसे ही राजाओं को स्थान दिया है जो प्रजा के लिये आदर्श शासक हो सकते हैं। कवि के विचार में राज्य सुख-भोग का साधन नहीं, एक कठोर कर्तव्य है। राजा कभी विश्राम नहीं कर सकता—

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः॥ (शाकुन्तलम्)

सूर्य के रथ में घोड़े सदा जुते ही रहते हैं; वायु दिन रात बहता ही रहता है; शेषनाग को भूमि सदा उठाए रखना पड़ती है; राजा का धर्म भी यही है।

"स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा सृष्टिरेवंविधैव।" (शाकुन्तलम्)

—"तुम्हें अपने सुख की कोई इच्छा नहीं। तुम्हें संसार के लिए प्रतिदिन दुःख उठाना पड़ता है। तुम्हारी सृष्टि इसी लिए हुई है।"

मनुष्य प्रतिदिन की अपनी ग़लतियों को नहीं जान सकता। प्रजा में कौन किस रास्ते जा रहा है, इसका ज्ञान किसे हो सकता है! ऐसे कठिन कर्तव्य को ठीक तरह निभाने वाला ही आदर्शराजा होता है। ऐसे ही आदर्श राजाओं का कवि ने रघुवंश में गुणगान किया है।

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥
प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

वे राजा त्याग के लिए धन लेते थे, सच बोलने के लिए थोड़ा बोलते थे; यश पाने के लिए विजय करते थे और सन्तान के लिए गृहस्थ करते थे। वे प्रजा से कर उसी की उन्नति के लिये लेते थे; जैसे सूर्य पृथ्वी से जल, हज़ारों गुना करके बरसाने के लिए ही लेता है।"

क्षत्रिय वही है जो प्रजा को विपत्तियों से बचाए—

"क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीत वृत्तेः प्राणैरुपक्रोश मलीमसैर्वा॥ (रघुवंशम्)

कवि ने आदर्श की कल्पना की है कि राजा के राज्य में ऐसा कोई नागरिक नहीं होना चाहिए जिसे कारागार में रखा जा सके। दिलीप पुत्र के जन्मोत्सव पर किसी बन्दी को मुक्त करना चाहता है किन्तु राज्य के कारागार में कोई बन्दी है ही नहीं।

"यथा प्रह्लादना चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथा सोऽभूदवन्र्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्॥" (रघुवंशम्)

—जो प्रसन्न करता है, वही चन्द्रमा है; जो तपाता है, वही सूर्य है; इसी प्रकार राजा वही है जो प्रजा का रंजन करे, उसे प्रसन्न करे।

राजा लोग प्रजाहित के लिए अपनी समूची सम्पत्ति का दान कर देते थे। राजा रघु सा अनन्त धनराशि का स्वामी सारी सम्पत्ति का दान करके कंगाल हो सकता है। उसके पास अब इस्तेमाल के लिए मिट्टी के बर्तन हैं—

'स मृण्मये वीतहिरण्मयत्वात् पात्रे निधायार्घ्य मनर्घशीलः।'

कालिदास ने अपनी कृतियों में राजवैभव एवं सांसारिक सुखभोग का वर्णन तो किया है, और पूरी सफलता से किया है, किन्तु इन सब के ऊपर उन्होंने त्याग तपस्या और संयम को ही प्रधानता दी है। सांसारिक ऐश्वर्य के चित्रण के बीच उन्होंने कलाकारिता से इसकी निःसारिता की ओर संकेत कर दिया है। सुखभोग को वे जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग अवश्य मानते हैं किन्तु इसे जीवन मानने के लिए वे कभी तैयार नहीं। राज्य-प्राप्ति से जो प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, वह केवल उच्चाकांक्षा को शान्त करती है, उससे संतोष नहीं मिल सकता।

"नातिश्रमापनयाय यथा श्रमाय।
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्॥"

—अपने हाथ में पकड़े हुए छाते से उतनी छाया और सुख नहीं मिलता जितना कि उसे उठाने से कष्ट होता है।

कवि ने उसी सुख तथा वैभव को श्रेय एवं प्रेय माना है, जिसका लक्ष्य त्याग तथा वैराग्य हो। वास्तव में कवि का मन उन्मुक्त प्रकृति में ही रमा है। तपोवन और प्रकृति का वर्णन करते हुए कवि का मन प्रेम तथा श्रद्धा के समुद्र में मग्न हो जाता है। "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में दुष्यन्त के रूप में स्वयं कालिदास राजदरबार के घुटे वातावरण से ऊब कर, शान्त तपोवन में पहुंच, प्रकृति की संगति में शान्ति और सन्तोष का अनुभव करता है। वास्तव में भारतीय सभ्यता का विकास तपोवनों में ही हुआ है। संसार की दूसरी सभ्यताओं के केंद्र प्रायः नगर रहे हैं। भारतीय सभ्यता ने तपोवनों को अपना मूल तथा केन्द्र बनाया है। तपोवन के शान्त वातावरण में रह कर प्रकृति के सूक्ष्म अध्ययन से ऋषियों ने परमसत्ता ईश्वर का अनुभव करके संसार को आश्चर्य चकित कर देने वाले जिस ज्ञान को फैलाया था, उसकी ओर कालिदास ने बार बार संकेत किया है। विशेष रूप से "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में कवि ने नगर और तपोवन दोनों की बड़प्पन-भावना में संघर्ष और उसमें तपोवन की विजय दिखलाई है।

कवि ने तपोवन को शान्ति, संतोष और वास्तविक सुख के रूप में चित्रित किया है। ऐसे तपोवनों और वहां के तपस्वियों की रक्षा करना राजा का सर्वोपरि कर्त्तव्य बतलाया गया है। राजा लोग राजसी ठाठ-बाट को छोड़कर ही तपोवनों में प्रवेश करते थे—

'विनीत वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि,
तदिमानि गृह्णन्तमाभरणानि धनुश्च।'
राजरक्षितानि तपोवनानि।
'धर्म्यास्तपोधनानां प्रतिहत विघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्कः॥" (शाकुन्तलम्)

कालिदास ने 'रघुवंशम्' में रघु के द्वारा कौत्स को कुछ प्रश्न करवाए हैं जिनसे तपोवन की सादगी और भोलेपन का परिचय मिलता है। रघु कहता है—"इन्द्र के धैर्य को हिला देने वाले महर्षि के शारीरिक, वाचनिक और मानसिक तप में विघ्न तो नहीं हो रहा है? जिन वृक्षों को आश्रम में पुत्रों की तरह पाला जाता है, उन्हें तूफ़ान आदि की विपत्तियों का सामना तो नहीं करना पड़ रहा है? तपस्वियों की गोद में सोने वाले मृग तो ठीक हैं? नदियों के जल ठीक हैं न? आपके केवल आने से हमें सन्तोष नहीं हुआ, कोई आज्ञा कीजिए। कल्प वृक्षों में रहकर ये मुनि केवल वायु से प्राण धारण करते हैं। सुवर्ण-कमलों वाले जल में केवल पुण्य के लिए नहाते हैं। रत्न-शिलाओं के घरों में ध्यान लगाते हैं। स्त्रियों के पास संयम करते हैं। साधारण लोग जिन चीज़ों को तपस्या का फल समझते हैं, उन्हीं के पास ये मुनि तपस्या करते हैं। चींटियों और दीमकों से निकली हुई मिट्टी में तपस्वी का आधा शरीर दब गया है। सांपों की केंचुलियां शरीर पर यज्ञोपवीत की तरह मालूम हो रही हैं। लताओं से तपस्वी का गला कस गया है। पक्षियों ने वहाँ घोंसले बना लिए हैं।

शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद्दहन्ति॥

–तपोवनों में शान्ति की प्रधानता है किन्तु उनमें सूर्यकान्त मणि की तरह तेज छुपा रहता है।

'यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद्धनम्।
तपः षड् भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः॥"

राजा को प्रजा से जो धन मिलता है, वह नष्ट हो जाता है, किन्तु तपस्वी अपने तप का जो भाग देते हैं वह कभी नष्ट नहीं होता। 'रघुवंशम्' में दिलीप अपने गुरु

वसिष्ठ को कहता हैं"—आप यज्ञ करते हैं; इस से सूखे खेतों में वर्षा होती है, मेरी प्रजा पूरी आयु पाती है; उसे कोई भय नहीं है। मेरे राज्य में कोई उपद्रव नहीं होता। इन सब का कारण आप ही हैं।"

'कुमारसम्भवम्' में कवि ने महादेव के तपोवन के शान्त वातावरण का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। लता गृह द्वार पर नन्दी खड़ा है; मुख पर एक अंगुली रख कर गणों को समझा रहा है कि कोई चंचलता मत कर बैठना। वृक्षों के पत्ते नहीं हिल रहे; भंवरे चुप हो गए हैं; पक्षी खामोश हैं; पशुओं ने चलना-फिरना बन्द कर दिया है। सारा वन चित्र लिखित सा लगता है। और महादेव—उन्होंने प्राणयाम के द्वारा शरीर की सभी शारीरिक क्रियाओं को रोक लिया है। वे ऐसे लग रहे हैं जैसे वह बादल जो अभी बरसा न हो, वह समुद्र जिसमें तरंग न उठ रही हो, वह दीप ज्योति जो बिल्कुल हिल न रही हो। ऐसे महादेव को देख कर यदि कामदेव का हाथ ऐंठ जाता है, धनुष-बाण गिर जाता है और उसे इसका पता भी नहीं चलता तो इसमें आश्चर्य ही क्या!

भारतीय सभ्यता ने स्त्री का बहुत मान किया है, क्योंकि वह मां है, मातृशक्ति है। मानव धर्म शास्त्र के प्रणेता मनु का कथन— "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" जहां स्त्रियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं। इसका प्रमाण है। कालिदास ने भी अपनी रचनाओं में स्त्री के लिए आदर भाव प्रकट किए हैं। कवि ने स्त्री को लज्जा से सिकुड़ी हुई और किसी के आ जाने पर मुंह छुपाकर भाग जाने वाली नहीं बताया है। तपोवन में दुष्यन्त के आने पर प्रियंवदा और अनसूया सभ्य लड़कियों की तरह उसकी आवभगत करती हैं। उनका व्यवहार सभ्य कही जाने वाली, पढ़ी लिखी, प्रगतिशील आधुनिक नारी से किसी तरह कम नहीं। हां, उनके व्यवहार में तथाकथित आधुनिक नारी की उच्छृङ्खलता अवश्य नहीं है।

पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार है किन्तु पत्नी का भी अपने पति पर पूर्ण अधिकार है, इस बात को कवि ने "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में कण्व ऋषि के मुंह से कहलवाया है:

शापादसि प्रतिहता स्मृतिलोपरून्दे
मर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव ।
छाया न मूर्छति मलोपहत प्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥

–तुम्हारे पति की स्मरण शक्ति शाप से नष्ट हो गई थी, इस लिए उसने तुम्हें त्याग दिया था। शाप के समाप्त हो जाने पर तुम्हारी उस पर पूरी प्रभुता अधिकार है।

कवि ने पति पत्नी के सम्बन्ध को कभी न टूटने वाला बतलाया है :

मार्गं मनुजेश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।
शशिना सह याति कौमुदी सह मेघैस्तडित्प्रलीयते ॥
प्रमदाः पति वर्त्मगा इति प्रति पन्नं विचेतनैरपि ॥

—चन्द्रमा के साथ ही चांदनी चली जाती है; मेघों के साथ ही बिजली विलीन हो जाती है। स्त्रियां पति के मार्ग पर ही चलती हैं। यह बात उपचेतन प्राणी भी अपने कृत्यों से प्रमाणित करते हैं। इसी तरह की स्त्रियों को ध्यान में रखते हुए गौतमी शकुन्तला को देवी कहलाए जाने का आर्शीवाद देती है।

लड़की पिता के घर पति की धरोहर है। पितृ कुल उसे देर तक अपने पास नहीं रख सकता। यदि स्त्री पितृकुल में अधिक रहे तो चाहे उसका चरित्र सती जैसा भी हो, लोग उस पर सन्देह करने लग जाते हैं। इसी लिए सम्बन्धी उसे, चाहे वह पति की प्यारी हो या न हो, पति के घर पहुंचाना चाहते हैं। पतिगृह ही स्त्री के लिए सब कुछ है। शार्ङ्गरव शकुन्तला से कहता है :

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पुनरुत्कुलयात्वया।
अथ तुवेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पति गृहे दास्यमपि ते क्षमम् ॥

—यदि वास्तविकता वही है जो राजा कहता है तो चरित्रहीन तुझ से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं और यदि तुम अपने चरित्र को पवित्र समझती हो तो पति-गृह की दासता भी तुम्हारे लिये उचित है।

शकुन्तला का जब दुष्यन्त से पुर्नमिलन होता है और दुश्यन्त इससे अपने अपराधों की क्षमा मांगता है, उस समय शकुन्तला उसे कोसती नहीं अपितु पर्याप्त उदार स्वभाव का परिचय देती है।

कवि ने अपने स्त्री पात्रों को घर की चार दिवारी में बन्द नहीं किया है। वह उन्हें मानव समझता है। वह स्वयं पति का चुनाव स्त्री का उचित अधिकार समझता है। रघुवंश में कवि ने इन्दुमती के स्वयंवर का बड़े चाव से वर्णन किया है।

भारत ने गार्गी, भारती, लोपामुद्रा जैसी विदुषी स्त्रियों को जन्म दिया है। कालिदास ने भी "कुमारसम्भवम्" में उमा की तपस्या का बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन तथा प्रशंसा की है और उमा की तुलना ऋषियों से की है— "तथाहि ते शीलमुदार-दर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां ययौ।" उमा तुम्हारा चरित्र तपस्वियों को भी शिक्षा दे सकता है।

कालिदास ने स्त्री का करुण चित्र प्रस्तुत भी किया है। "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" तो है ही स्त्री के करुण जीवन की एक शोक गाथा। लोक निन्दा से डर कर राम सीता का परित्याग करते हैं। सीता लक्ष्मण के हाथ राम को संदेश भेजती है :—"मेरी ओर से राजा को कहना कि मेरी अग्नि-परीक्षा हो चुकी थी, फिर भी केवल लोक निन्दा के डर से जो तुमने मेरा त्याग किया, क्या यह तुम्हारे कुल के अनुकूल है ? नहीं, तुम्हारी बुद्धि कल्याण कामना वाली है। उसमें ऐसे स्वेच्छाचार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह सब मेरे दुष्कर्मों का ही फल है। तुम्हारे वियोग से मेरा जीवन निष्फल हो गया है। फिर भी मुझे इस शरीर की रक्षा करनी है। मैंने तुम्हारे तेज को अपने में धारण किया है। मैं गर्भिणी हूं। मनु ने प्रजा पालन राजा का धर्म कहा है। चाहे तुमने मुझे निर्वासित किया है, फिर भी मैं तुम्हारी प्रजा तो हूं ही। मेरी बिल्कुल उपेक्षा न कर देना।" सीता की दयनीय दशा देखकर बाल्मीकि को भी राम के प्रति क्रोध करना पड़ता है।

करुण स्त्री जीवन का करुणतम भाग विधवा जीवन है। संसार में बड़े से बड़ा दुःख भी इस दुःख की तुलना नहीं कर सकता। कालिदास ने "कुमारसम्भवम्" में कामदेव के भस्म हो जाने पर विधवा काम-पत्नी रति के विलाप में करुणा की नदी सी बहाई है।

भारतीय सभ्यता ने स्त्री को जो मान दिया है, उसे कवि ने अजविलाप में, संक्षेप में यूं कहा है :

"गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या च ललिते कलाविधौ।
करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किंन मे हृतम् ॥"

—तुम मेरी गृहिणी थीं, मन्त्री, मित्र और ललितकला सीखने में प्रियशिष्या थीं। निष्ठुर मृत्यु ने तुम्हारा हरण करके मेरा सब कुछ हर लिया।

भारतीय सभ्यता में विवाह और गृहस्थाश्रम को बहुत आदर का स्थान दिया गया है। कालिदास ने भी विवाह और गृहस्थाश्रम की बहुत प्रशंसा की है। किसी भी विवाह का वर्णन करते हुए कवि इतना आनन्दविभोर हो उठता है, जैसे वह उसके किसी निकट के सम्बन्धी का विवाह हो। "रघुवंशम्" में अज के विवाह के प्रसंग में कवि कहता है—इन्दुमती के हाथ को पकड़े अज ऐसा लगता है, जैसे आम के वृक्ष ने अपने से लिपटी हुई अशोकलता का कोमल पत्ता पकड़ लिया हो।···राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अपनी पत्नियों के साथ ऐसे सुन्दर लगने लगे, जैसे उनके पास साम, दान, दण्ड, भेद नाम की सिद्धियां आ गई हों।···वह विवाह ऐसे हुआ जैसे प्रकृति-प्रत्यय का संयोग।···विवाह के बाद वह तीन रानियां राजा के पास इस प्रकार आईं जैसे पार्वत्य नदियां समुद्र के पास जाती हैं।

गान्धर्व विवाह शास्त्र सम्मत अवश्य है किन्तु कवि ने उसमें कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई है। शकुन्तला की दयनीय दशा का कारण गान्धर्व विवाह ही है। इस सम्बन्ध में उसने अपने पाठकों को बहुत सावधान रहने के लिए कहा है :

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् सङ्गतं रहः।
अज्ञात हृदयेष्वेवं वैरी भवति सौहृदम्॥

—गुप्त सम्बन्ध के विषय में विशेष सावधान रहना चाहिए। अनबूझे हृदय से किया हुआ प्रेम जीवन का शत्रु बन जाता है।

कालिदास भारतीयता के उपासक हैं, इस लिए वे भारत के भी उपासक हैं। देश के कण कण से उनका परिचय ही नहीं, घनिष्ट सम्बन्ध है। इसका उदाहरण हमें महान् गीति काव्य मेघदूत में मिलता है। मेघदूत को समालोचकों ने साहित्यक भूगोल (Literary Geography) कहा है। इसमें कवि ने भारत के विभिन्न भागों, वहां के निवासियों तथा उनकी वेशभूषा एवं रीतिरिवाजों का सुन्दर, आकर्षक विवरण दिया है। रघुवंश में रावण विजय के बाद सीता के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हुए राम के मुख से भी कवि ने भारत का सुन्दर वर्णन करवाया है।

भारतीय मनीषा ने काम (Sex) को भी शास्त्र (Philosophy) माना है। यह घृणित विषय नहीं है। कालिदास ने इस विषय को अपनी रचनाओं में काफ़ी महत्वपूर्ण स्थान दिया है; किन्तु कहीं भी उस में बीभत्स अश्लीलता नहीं आने पाई है। अत्यधिक कामलोलुपता व विलासप्रियता नाश का कारण होती है, यह घोषणा कवि ने कई स्थलों पर की है। "कुमारसम्भवम्" तो है ही विलास से आसक्ति तथा विलास से निवृत्ति की कहानी। महादेव-महान् देवता-मानव का मन ही कामदेव को जला सकता है, इस घटना से काम की दुर्जेयता सूचित होती है। कामदेव जलकर पुनर्जीवन भी प्राप्त करता है, इससे काम की अनिवार्यता भी सूचित होती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कालिदास का साहित्य भारतीयता का साहित्य है। कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों में से एक थे। विक्रमादित्य अपनी यशस्विता के कारण इतने लोकप्रिय हुए कि उनके बाद होने वाले भारतीय शासकों ने अपना नाम विक्रमादित्य रखने में गौरव समझा। इसी प्रकार कालिदास भी कवि के रूप में इतने प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हुए कि उनके नाम के अनेकों कवि हो गए हैं और बहुत घटिया किस्म की कविता भी कालिदास के नाम पर थोंप दी गई है। और तो और, पंजाबी साहित्य में भी एक कालिदास का नाम कहा-सुना जाता है। किसी कवि की लोकप्रियता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है। हमें अभिमान है कि कालिदास भारत के हैं और कवि को भी अभिमान है कि

वह भारत का है। कालिदास ने भारतीय संस्कृति को सरस, मधुर कविता के माध्यम से विश्वजन मानस में उतार कर देश की अभूतपूर्व सेवा की है। आज भी कालिदास के साहित्य का अध्ययन भारत में भावात्मक एकता स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योग दे सकता है।

●

"मनोविज्ञान के क्षेत्र में कालिदास ने एक ऐसे रहस्य पर प्रकाश डाला था, जिससे पाश्चात्य जनता फ्रायड के पूर्व परिचित न थी। जिस अवचेतन मन का आविष्कार आधुनिक युग में फ्रायड ने किया, उसे कालिदास डेढ़ हजार वर्ष पूर्व अपनी आश्चर्यमयी अन्तः प्रज्ञा की प्रेरणा से जान गये थे। जब दुष्यन्त का अभिशप्त सचेत मन शकुन्तला को एक दम भूला हुआ था, तब सहसा एक दिन उसके कानों में एक गीत की झनक पड़ी, जिसे रानी हंसपदिका गा रही थीं। वह गीत उलाहने के तौर पर गाया जा रहा था। उसमें भ्रमर के प्रति यह उपालम्भ था कि, 'कमलिनी के प्रति पिछले अनुराग को भूलकर तुम आज आम की रसभरी मंजरी से लिपटे हुए हो।'
इस विशिष्ट ध्वनिपूर्ण गीत को सुन कर दुष्यन्त के हृदय में सहसा एक अनजानी उदासी छा जाती है।"

—इलाचन्द्र जोशी

●

बिम्ब-प्रतिबिम्ब

कश्मीरी-कविता

शिहिलि कुल • पेड़ छायादार

दीनानाथ नादिम

अनु० : मोहन 'निराश'

शिहिलि कुलाह अज़ीम ज्युठ त् ज्यूठ ज़न त् जद पनुन ।

वसी त् बागिवुरुत रायिला बुलंद-क़द पनुन ।

वुमर त् वास बेहिसाब,

थज़र बजर ति लाजवाब,

पताल अथ छु गुड त् आस्मान अथ छु हद पनुन ।

शिहिलि कुलाह छु जद पनुन ।।

पेड़ छायादार,
काया भव्य इस की,
आयु को आया हुआ,
ऊपर उठा,
तन कर खड़ा है,
पूत-पावन है स्वजन पुरखा हमारा ।
पल्लवित हर डाल, शाखा;
है शिखा से मूल तक यह पल्लवित
रस से भरा है;

भाल इसका है उठा आकाश तक,
गौरव भरा, है-
देह पौरुष से भरी;
जीवन समाया है
हिलोरें ले रहा रग-रोम में;
है आयु इसकी आदि-युग से चली आई,
अन्त इस का ही नहीं होगा कभी भी;
देह का विस्तार, यह आकार;
जोड़ा है न इस का;
मूल इस के हैं धरा के गर्भ में,
है अन्त इस का व्योम की निःसीमता में ।
पेड़ छायादार यह पुरखा हमारा ।।



छि वॅरॅग बॅरॅग आत् रॅसि, लंगन लंजन शुमार क्याह?
वॅथॅर वॅथॅर छि ताज़ृदम, पॅतॅर सदा बहार क्याह ?
इ सब्ज़ सब्ज़ नूर ह्यु,
छु सोंतक्युय सरूर ह्यु,
रुचिथ मि थोव दिवताह्व ज़मीनि स्वर्गदार क्याह ?
इ कुल सदा बहार क्याह ?

पेड़ छायादार :
यह विस्तार ! संख्यातीत शाखें;
डालियां ये टहनियां अगणित;
अलौकिक रूप;
रस की अमर गंगा बह रही
इस की गठीली देह में;
है स्नेह का यह पुंज ;
इस की पत्तियां हैं
पातियां मनहर बहारों की पठाईं ;
है नशा यह मदिर माधव का ;
रसीला राग जीवन का ;
इसे रोपा धरा में देवताओं ने ;

अमिट वरदान इस को दे दिया—
"तुम स्वर्ग हो जाओ !"
यही वह पेड़ छायादार,
माधव नाम जिस का ;
पेड़ छायादार, जोड़ा है न इस का ।।



दपान अथ ग्वडस छु प्राख ज़न्म् अमर्यताह् प्युमुत ।
दपान दस्ते-पाक अथ दयन छु पान् डोलमुत ।
च्चत्यव न् अथ यि रंग ज़ांह्,
मुल्येह् तत्योस न् हंग ज़ांह्,

सगिथ अलाल ख़ान आसमानि गंगि पोलमुत ।
दयन छु पान् पोलमुत ।

पेड़ छायादार :
ऐसा है न दूजा विश्व में ;
कहते—इसे पिछले जनम में
अमरता ने था नहाया ;
मूल इस का सींच डाला था सुधा ने ;
ईश ने इस को परस पावन दिया था ;
अंग इस के रंग से भर पूर,
अब तक
जन्म-जन्मों बाद भी जो उड़ न पाये;
एक भी फुनगी न इसकी
ताप से मुरझा गई;
स्वर्ग-गंगा ने इसे है सींच डाला;
अमृत की मधु-धार इस को है पिलाई;
औ' इसे पाला;
अमर आशीष पाकर
यह बड़ा होता गया;
है आंख का तारा, हृदय का चांद उस का;
ईश ने इस को रचा,
पोषण किया है ।
पेड़ छायादार यह पुरखा हमारा ।।

गुहुल यि सोंत् उबरॅची ह्य ज़न त् ज़ुल्फ़ चादराह् ।
शिहुल चंदन लतायि ज़न हरान शबनमाह् हवाह् ।

मह्यु ल छु ज़ंत् लोल् हुत,

व्यव्र-जिगरि हुंद यि नाल्मुत,
रस्युल दिवां छु पोशनूल पोशिनूजि आलवाह् ।
शिहुल छु ज़न चन्दन हवा ।।

पेड़ छायादार :
यह विस्तार;
काया दिव्य इस की;
है शिखा से मूल तक सर-सब्ज़;
पत्तों से भरा;
कादम्बिनी ज्यों बांटती हो छांह मीठी;
है घना; शीतल;
सजल शबनम बिखेरे जा रही हो वायु,
चन्दन लेप से सिंगार जिस ने कर लिया हो;
नेह का यह रूप;
बहना का गले लगना,
कि पड़ना बांह का घेरा
समय के बाद
भाई के गले में;
शब्द है "रस" का,
कि जिस का अर्थ :
देता प्यार से आवाज़
रसिया 'पोशनूल'
संगिनि को कहीं से,
सघन कुंजों से घिरी वन-वीथिका से;
है सरस, शीतल,
पवन छन आ रहा हो
संघन चन्दन की वनाली से मचल कर;
पेड़ छायादार :
है अस्तित्व इस का दिव्य, पावन ।।

यि छ़ोर लोल् सान आसमान् क्यव जनावरव ।
यि कोंछ मायि सान शश जहानक्य दिलावरव ।
दुपुरव लसव बसव यती,
गिंदव यती, असव यती,
ज़्यवव, ज़ुवव, नवव, फ़ुलव यती ह्यमुत समुत करव ।
यि वुन हसीं जनावरव ।

पेड़ छायादार :
यह खोजा गगन के पंछियों ने
विश्व के इस खण्ड ने, उस भाग ने
ले राग अन्तर में-
प्रबल, निर्बाध इच्छा से इसे चाहा,
कहा—
"हम नीड़ इस को ही बनायेंगे,
यही इहलोक औ' परलोक अपना,
है यहीं आवास, हम उल्लास लेकर
गीत गायेंगे, हंसेंगे, प्यार बांटेंगे;
हम यहीं जन्में, बड़े हों,
हों यहीं साकार अपने स्वप्न सारे;
ले प्रबल, निर्बाध हिम्मत
हम सभी शुभ काज पूरा कर दिखायेंगे ।"
कहा सुन्दर मनोहर पंछियों ने,
"पेड़ छायादार यह संसार अपना ।"



छि ह्यतिं त् प्रनि त् हारि कैंह त् कैंह छि ज़ग त् शाम् रंगि ।
छि कैंह तुरकि त् कैंह अजमि त् कैंह यतिकि त् कैंह फ़रंगि ।
मगर इमन छि आलि यति,
इमन छि माजि मालि यति,
इमन ह्य ईद यति, वेशाखि यति त् हूलि रंग-बरंगि ।
कुनी छि प्रनि त् शाम् रंगि ।

पेड़ छायादार :
यह संसार अनगिन प्राणियों का,
रंग-बिरंगे रूप !
कोई श्वेत,
काले हैं कई,
गोरे,
कई हैं गेहुंयें,
है श्याम कोई,
हैं कई तुर्की,
अजम के हैं कई,
इस देश का कोई,
कई हैं पार पच्छम के,
मगर सब का यही आवास,
सब की मां यहीं, बाबा यहीं है;
तीज और त्योहार—
हैं यहीं लगते,
यहीं पर ईद होती,
है यहीं पर
होलियां पिचकारियां ले रंग बिखराती चली जातीं;
खिलाती फूल बैसाखी धरा के हर कदम पर;
हैं कई काले, कई हैं श्वेत;
पर हैं एक सारे;
पेड़ छायादार
यह संसार इन सब प्राणियों का ।।

●

छि बोल-बोश वारियाह, वज़ान ज़न ह्य बनसरी ।

सरोद, तबल़् , नुट, सितार, राग सुय असोवरी ।
टिरिव टिरिव त् गूपियो,
चिरिव चिरिव, पियो पियो,

सदा छि ब्युन, अवाज़ कुनि, इहै ह्य सानि वरतरी ।
छ़् राग सुय असोवरी ।

पेड़ छायादार :
है आगार अनगिन बोलियों का;
टेरती वंशी,
मधुर संतूर की झंकार आती
है घड़े की गूंज,
तबला थाप देता,
और यह वीणा हुई है बावली :
यह राग है आसावरी का ।
पंछियों की बोलियां :
टी वी टि टू कू
टेरता है दूर से कोई स्वजन को,
संगिनी को,
है बुलाता : "आ प्रिया !"
"आ जा पिया !"
ये गीत मन को जीत लेते,
बोलियां ये भिन्न
पर आवाज़ इनकी एक ही है;
सप्त स्वर का है मधुर सरगम
सभी समवेत गाते :
राग है आसावरी का ।
पेड़ छायादार :
है आगार अनगिन बोलियों का ।।



शिहिलि कुल्युक यि सायि जानवरनय छु ता आबद ;
फर्यंस न् ज़ांह् नज़र, कर्यंस न् कांह् ज़रर दुआ-ए-बद ।
प्ययस न् सायि वारिल्युन,
न् शह्नि हुँद न् नदहरुन,
अमिस ज़मीनि हुँद छु स्नेह तु आसमान् कुय मदद ।
यि ज़िंद् रोज़ि ता-अबद ।

पेड़ छायादार :
यह है बांटता मधु छांह शीतल
पंछियों में;

जन्म-जन्मों तक मधुर रसधार
पाते ही रहेंगे;
है यही आवास,
इनकी मां यहीं, बाबा यहीं है;
शाप कोई दे,
निरखता जाय शनि की दीठ से कोई इसे,
पर कुछ नहीं होगा;
न इसका एक भी पत्ता पड़ेगा ज़र्द;
टहनी में पड़ेगा बल नहीं,
मनहूस साया छू नहीं सकता इसे,
औ' मौत की स्याही
नहीं कर पाएगी धुंधला इसे;
है भूमि ने इसको दिया मधु स्नेह;
अम्बर ने दिया आशीष इसको;
पेड़ छायादार :
यह कल्पांत तक जीवित रहेगा ।।



चुपारि आसितन यिथी शिहिलि कुलि छु दुआ पनुन ।
"नविन फुलिन यि बाग़ आलमुक" छु ती मुदा पनुन ।
रसा-मसा लसिन बसिन,
रसा-मसा गिंदिन असिन,
कुनुय जहान् क्यन जनावरन हवा नवा पनुन ।
शिहिलि कुल्युक मुदा बनुन ।

पेड़ छायादार :
ऐसे हों धरा की हर दिशा में,
है यही इच्छा,
यही है चाह अपनी;
विश्व की यह वाटिका
सर-सब्ज़, हरियाली भरी हो;
रेत का हर कण कली बन जाए;

पत्थर से बहे रसधार,
जीवन;
औ' हवा जो भी बहे
हो जाय वंशी का मधुर आह्वान;
है अरमान इतना;
इस विहग को उस विहग का प्यार मिल जाये;
यहां पर
हर कदम जो भी पड़े
मधु लास बन जाये यहां;
मधु केलि कौतक से जगत की वाटिका–
यह एक मेला हो;
बने त्योहार भू का हर दिवस्;
यह बांटना स-स्नेह छाया
है यही उद्देश्य इस मधु कल्पद्रुम का;
पेड़ छायादार ऐसे हों धरा की हर दिशा में।
पेड़ छायादार यह पुरखा हमारा।



वह सुन्दरतम सागर
जो हम ने अभी देखा नहीं
वह सुन्दरतम बालक
जो अभी बढ़ा हुआ नहीं
वे हमारे सुन्दरतम दिन
जिन्हें अभी जिया हमने नहीं
वे मधुरतम बातें
जो मैं तुम्हें कहना चाहता हूं
मैंने अभी कही नहीं।

—नाज़िम हिकमत, तुर्की-कवि
(कारागार से पत्नी के नाम)

शीशा

केहरि सिंह "मधुकर"

कुन झांका दा शीशे अन्दर ?
ए कोदा परछामां ? मेरा !
में ते कदें बी नईं होई सकदा,
में ज्ञाणी, दानी, प्राकर्मी,
दुनियां दा सच्चा उपकारी,
ए नईयों मेरा परछामां !
ए कोई चोर लफंगा लब्बै,
डाकू-धाड़ू सेई हुन्दा ऐ,
ए निसतेज नोहार,
मुहां पर कालख जन थोपी दी !
इस कमरे बिच में गै कल्ला,
फी कुन झांका दा शीशे इच,
ए कोदा परछामां ? मेरा !
में ते कदें बी नईं होई सकदा,
मेरी अक्खीं दे शारें'ने,
रोज नमें इतिहास लखोन्दे,
मेरी हर गै मजल खोआन्दी,
में निश्काम-भगत मोहत्यागी,
कवि लखारी,
सारी दुनियां लोहा मनदी,
ए नईयों मेरा परछामां,
ए कोई धोखेबाज फरेबी, बड्डा झूठा फफड़ताली,
अक्खीं दै बिच भरी चलाकी !
इस कमरे बिच में गै कल्ला
फी कुन झांका दा शीशे इच ?
ए कोदा परछामां ?
ओ अड़ेओ ! शीशा गै मैला,
पहलें इस गी गोली लैन्नां !
पर सुने आं !
कोई के आखा दा,
"शीशे गी कैं गोला करना,
गोल मना दी मैल !!"

दर्पण

अनु॰ : नरेन्द्र खजूरिया

कौन झांकता है दर्पण में ?
यह किसका प्रतिरूप ? मेरा !
नहीं, नहीं, मेरा नहीं,
मैं ज्ञाणी, दानी, पराक्रमी,
दुनिया का सच्चा उपकारी,
यह मेरा प्रतिरूप नहीं है !
यह कोई चोर लफंगा दीखे,
डाकू धावक-सा लगता है,
मुख पर पुती हुई कालिख है !
पर इस कमरे में मैं एकाकी,
फिर यह कौन झांकता दर्पण में ?
यह किसका प्रतिरूप ? मेरा !
नहीं, नहीं, मेरा नहीं,
मेरी आंखों का हर इंगित
नित्य नया इतिहास बनाता
मेरा हर इक पग मज़ल है
मैं निष्काम-भक्त, मोह त्यागी,
लोहा माने दुनिया सारी,
कवि-लिखारी,
यह प्रति रूप नहीं हो सकता मेरा
यह कोई धोखेवाज़ फरेबी, बहुरूपी बाचाल !
आंखों में चालाकी भर कर
पर कमरे में मैं ही एकाकी
फिर यह कौन झांकता दर्पण में ?
यह किसका प्रतिरूप ?
ओ, अरे ! दर्पण ही मैला,
इसको पोंछ लूं पहले ।
पर, सुनो तो—
कोई क्या कहता है,
"दर्पण को क्यों पोंछ रहे हो ?
पोंछो मन की मैल !!"

शीशा

सपन माला

कई दिनां तों कर रही हां कोशिशां,
ज़ंग अलूदै, दिल दा शीशा की करां?
धुंधला ए माहौल ते गदली जेही मेरी नज़र,
वेख लां शीशे'च सूरत किस तरांह?
एह सिहांसन चांदियां दे, हीरेयां नाल ने जड़े
एह बदन सोने दे, किस बुत्त ने घड़े?
वक्त दे घट्टे नूं पूंजा सूझ दे पल्ले दे नाल
हूँज लां धरती तों ज़र्रे, मलकड़े वल्ले दे नाल
मिट रही अखियां दी ज्योति बिच तारे भर देआं
थां कुथां डिगदे ने हंजू इक सारे कर देआं
दिल दे शीशे चों विखावां, जग नूं वेले दे दाग
कील लां जादू दे पुतले, कील लां ज़हरा दे नाग
सुट्ट देआं संघनी जहीं धुप्पे, मैं सधरां दे एह हार
चुन लवां सारे दे सारे; राह चों तिखे जहे खार
एह विषैले रत्त सारे डीक लाके पी लवां
चार दिन दी ज़िन्दगी, बेहोश रह के जी लवां
कर देआं नदियां'च सोके भर देआं अक्खां'च नीर
रंग उमरां नूं दवां सुथरी करां हर इक ज़मीर
मुड़ न पपड़ी बुल्ल ते हासे न बुल्लों बाहर होन
बे थवा हस्से न कोई, आ मुहारे मुड़ न रोन
ज़ंग लैह जावन दिलां तों, साफ दिसन सूरतां
एह रब्बी धोतियां एह सीरतां एह मूरतां

•

दर्पण

अनु : विजय सुमन

कई दिनों से कर रही हूं कोशिशें,
मलिन, धुंधला, दिल का दर्पण, क्या करूं ?
धुंधला है चहुँ ओर, दृष्टि भी मलिन सी,
फिर भला, दर्पण में देखूं रूप अपना किस तरह ?
ये सिंहासन कीमती हैं, रत्न हीरों से जड़े-
ये हेम-निर्मित देह ; रचयिता कौन है ?
मैं समय की धूल को लूं पोंछ, कल्पना-वस्त्र से,
औ' धरा के ये चमकते कण समेटूं लग्न से,
जो नज़र मैली है उस को दूं सितारों की चमक,
अश्रु कण बिखरे हुए हैं, उनको चुन कर लूं पिरो,
जग को दिल-दर्पण दिखाऊं, काल की कालिख लिए
कील दूं जादू के पुतले, कील दूं ज़हरीले नाग,
इस घने आतप में फैलाऊं मनोरथ-हार ये,
पथ के सारे कंटकों को चुन लूं, गोदी में भरूं
पी लूं सारे ज़हर को इक धार, अंजुली में लिए,
चार दिन की ज़िन्दगी, बेहोश रह कर जी लूं मैं,
सोख लूं नदियों का पानी, नयन रीते भर दूं मैं,
जीवन बना दूं रंगमय, निर्मल करूं हर आतमा,
फिर न सूखें ओठ, हंसी अधर से बाहिर न हो
बेसमझ हंसे न कोई, औ' अकारण रोए न,
साफ हों दर्पण दिलों के, रूप झलके साफ साफ
ये सूरतें ये सीरतें सब में उजाला दिव्य हो !!

•

अपनी अपनी सीमाएँ

● मोहन यावर

—यदि मैं चाहूं तो यह वर्षा थम सकती है और तुम अपनी पतंग जी भरके आकाश में उड़ा सकते हो।

—यदि मैं चाहूं तो तुम्हारा यह कच्चा घर एक ही पल, केवल आंख झपकते ही एक सुन्दर महल बन जाए—शहर में सब से सुन्दर !

—और यदि मैं चाहूं तो तुम और मैं सतरंगे झूले में बैठ कर आकाश में पहुंच जाएं, चन्दा मामा के संसार में !

आज तुम अचानक आ गईं तो मेरा बीता जीवन भी सजीव हो उठा।

तुम सुन्दर थी ; तुम्हारा पति सुन्दर था, और तुम्हारी कार भी सुन्दर थी ! तुम्हारे पति ने कार से निकलते हुए कहा था—लता, अच्छा हो, अगर बटोत में ही रहें। सुबह श्रीनगर चल देंगे !

पहले तुम ठिठक गई थी, मानो अज्ञात भय मन को कंपा गया हो, फिर स्वयं ही कार से उतर पड़ी थी।

बिल्कुल वही चेहरा, वही चाल, वही मीठी-मीठी सरस बातें। सभी कुछ वही था। दस वर्ष अतीत की गहन खाइयों में लुड़क गये थे लेकिन तुम नहीं

बदली। वैसी ही चंचल, चपल, जैसे कल-कल बहती नदी हो। जैसा मैं तुम्हें छोड़ गया था—आज वैसा ही देख रहा हूं। तुम्हारे चेहरे पर कुछ उदासी सी छाई हुई थी। शायद तुम यहां रुकना नहीं चाहती थी। तुम्हारी बड़ी-बड़ी नीली आंखें डाक-बंगले की ओर उठीं, शायद तुम सोच रही थी कि कोई जादू का कालीन बिछा दे और तुम आंख झपकते ही डाक-बंगले में पहुंच जाओ और तुम्हारे पति ने तुम्हारी पतली नाजुक कमर में बांह लपेट कर जादू का कालीन बिछा दिया था और तुम डाक-बंगले में थी।

मैं बहुत प्रसन्न था—मेरी केवल एक यही इच्छा तो थी। जन्म जन्म से यही चाहा था मैंने कि, तुम सदा-सदा मुस्कराती रहो! मैं तुम्हें सदा-सदा मुस्कराते हुए देखना चाहता था और मैं खुश था कि तुम खुश हो—प्रसन्न हो !

चाँद चांदनी बिखेर रहा था, और सारा बटोत चांदनी में नहाया हुआ लगता था। चील के पेड़ों में हवा सरसरा रही थी—मानो चील के विशालकाय पेड़ झूम झूम कर आपस में खुशगपियां उड़ा रहे थे। पास ही बहती छोटी सी चंचल नदिया की 'कल-कल' मन को मोह लेती थी। सेनेटोरियम से किसी के चीखने की आवाज़ दूर-दूर तक गूंज रही थी—शायद कोई इस दुनिया से जा रहा था।

जब चांदनी मचल-मचल रही हो, बीता जीवन सजीव होकर आंखों में नाच रहा हो, ऐसे में नींद भला कहां से आए, और क्यों आए ?

मैं चुपके से सड़क पर आ गया और चलते चलते बहुत आगे निकल आया। मैं और भी आगे निकल जाता, किसी की पुकार से ठिठक कर यदि रुकना न पड़ता। लेकिन घूम कर देखा तो वहां कोई न था। केवल चांदनी थी, मेरी छाया थी, मैं सड़क के किनारे एक बड़े से पत्थर पर बैठ गया। नीचे नदिया कल कल कर रही थी और चांदनी उस कल कल में तैर सी रही थी।

आज से बहुत पहले, जब मैं तुम्हारे कथनानुसार बहुत कुछ था, तुमने एक बार कहा था—मैंने रंग-बिरंगे फूलों में झांका, तितलियों में ढूंढा, चांदनी में खोज की, चन्दा में झांक कर देखा—लेकिन तुम सा कहीं भी न दिखाई दिया।"

उस समय मैं तेरह बरस का था और तुम ग्यारह की। तुम फिराक पहने सदा उछल कूद करती रहती थी। उस समय भी तुम्हें एक धनाढ्य पिता की लाडली होने का अभिमान था। वही अभिमान अब भी तुम में है। जमाना बदल गया, लोग बदल गए, समय बदल गया लेकिन तुम्हारा अभिमान वैसे का वैसा ही रहा। यहां तक कि तुम भी बदल गईं, बचपन से जवानी में और जवानी से एक प्रौढ़ औरत के रूप में, लेकिन तुम्हारा अभिमान नहीं बदला। यदि तुम्हें अपनी सुन्दरता पर इतना ही

मान है तो मैं बुद्धनशाह के मज़ार पर जाकर तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगा कि, तुम्हारा अभिमान सदा सदा के लिए बना रहे, तुम ऐसी ही रहो, तुम्हारा माथा कभी न झुके, तुम इसी प्रकार चंचल और चपल बनी रहो ? मैं जानता हूं बुद्धनशाह किसी को निराश नहीं करते ।

तुम्हें वह जन्माष्टमी याद होगी जब मैं एक रोज पहले ही पतंग और डोर लेकर इस आशा में बैठ गया था कि मेरी पतंग शहर के सारे पतंगों को काट देगी और तुम तालियां बजा बजा कर "वो काटा, वो काटा" पुकारोगी । लेकिन मेरी आशा पूरी न हो पाई थी । रात भर वर्षा होती रही और जन्माष्टमी के दिन यूं जान पड़ता था कि तवी में आज जैसे प्रलय होकर रहेगी ।

बाढ़ आ गई थी । आस-पास के कई गांव उस में बह गए थे ।

तुम एक सुन्दर-सा छाता लिए, एड़ियां उठा उठा कर पानी में भीगती मेरे पास आई थी । मैं निराश बैठा, वर्षा और उसके देवता इन्द्र को गालियां दे रहा था ।

तुमने कहा था—पगले, राजा इंद्र को मत कुछ कहो । यदि वे रूठ गए तो सारे शहर को बहा ले जाएंगे ।

–तो क्या होगा ? मैं और तुम भी तवी में बह जायेंगे । मैंने तुम से कहा था ।

तुमने मेरे मुंह पर अपने नन्हें कोमल हाथ रख दिए थे और कहा था—ऐसा नहीं कहते । तुम इस लिए राजा इन्द्र को गालियां दे रहे हो कि वर्षा नहीं थमती, और तुम पतंग नहीं उड़ा सकते ।

मैंने जल्दी से कहा था—हां ।

तब तुमने नाटकीय ढंग से हाथ हिला-हिला कर कहा था—यदि मैं चाहूं तो यह वर्षा थम सकती है और तुम अपनी पतंग जी भर कर के आकाश में उड़ा सकते हो ।

मुझे वह दिन भी याद है जब जोरों का पानी बरसा था । शहर के कितने ही मकान गिर पड़े थे । हमारा एक कमरा भी गिर गया था । जब तुम्हें पता चला कि हमारा एक कमरा, जहां मैं और तुम बैठा करते थे, गिर गया है, तो तुम्हारी आंखों में आंसू आ गए थे और तुम पानी में भीगती हुई दौड़ कर मेरे पास आ गई थी ।

तुमने आते ही कहा था—तुम्हारा कमरा गिर गया ?

–हां !

तब तुमने बांहों को हवा में लहरा-लहरा कर अभिमान के साथ कहा था — यदि मैं चाहूं तो तुम्हारा यह कच्चा मकान एक ही पल में, केवल आंख झपकते ही एक सुन्दर महल बन जाए, शहर में सब से सुन्दर ।

इस दुनिया में तुम ही एक थी जिसे हम लोगों का इतना ख्याल था । हमेशा तुम्हारी यही इच्छा रही कि हमारा मकान भी तुम लोगों के मकान जैसा बन जाए । तुमने हमेशा यह चाहा था कि मैं और तुम दोनों इन्द्र-धनुष के सात रंगी मकान में बैठ कर नीले आकाश में चले जायें और अपनी एक नई दुनिया बसा लें । एक ऐसी दुनिया, जैसी तुम्हारी दुनिया थी ।

और इसी तरह मेरी तुम्हारी कहानी आगे बढ़ती गई ।

मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है जब तुम पहली बार कालेज गई थी । तुम्हें लड़कियों ने "फर्स्ट इयर फूल" बना कर बहुत सताया था । तुम भाग कर मेरे पास आई थी ।

मैंने तुम्हें उदास देख कर पूछा था—दुनिया को खुश रखने वाली आज स्वयं क्यों उदास है ?

तुमने उत्तर में कहा था—मैं कालेज नहीं जाऊंगी ।

-- लेकिन, क्यों ?

—लड़कियां मुझे परेशान करती हैं ।

पहले तो मुझे हंसी आ गई थी कि इस अभिमानिनी के सामने कौन लड़की सिर उठा सकी होगी, लेकिन दूसरे क्षण मैं भी उदास हो गया था । मैंने कहा था—कल मैं तुम्हें छोड़ने जाऊंगा ।

— तुम लड़कियों के कालेज जाओगे ?

—तो क्या होगा ?

--होगा तो कुछ नहीं, यदि किसी ने पूछ लिया कि कौन है यह, तो मैं क्या कह पाऊंगी ?

—तो कह देना मेरे...।

--बहुत चालाक हो गए हो ।

कह कर तुम भाग गई थी ।

गर्मियों की छुट्टियां थीं, तुम लोग बटोत जा रहे थे । तुम्हारी इच्छा थी कि मैं भी तुम लोगों के साथ बटोत चलूं । मैं तुम्हें कोई आशवासन न दे सका था ।

तुमने कहा था—मैं जानती हूं, तुम क्यों नहीं जाना चाहते ?

—क्यों नहीं चाहता ?

और तुमने अपनी नई फिराक से सौ रुपये का नोट निकाल कर कहा था—यह लो, अब तो चलोगे न ?

मेरी आंखों में आंसू आ गये थे, मैं कुछ कह न पाया था। तुम नोट को मरोड़ती हुई कुछ बुझी बुझी चल दी थी।

मैंने जीवन में उस दिन पहली बार तुम्हें उदास और बुझी सी देखा था। मैं देर तक मां की गोदी में सिर झुकाए रोता रहा।

—रोते क्यों हो बेटा, क्या हुआ ?

मेरी मां ने मेरे आंसू तो पोंछ दिये थे, लेकिन मां की आंखों में आंसू चमक उठे थे।

—लता बटोत गई है, तुम भी जाना चाहते हो। बस इतनी सी बात और इतना बड़ा नाटक !

—नहीं मां, यह नाटक थोड़े ही है।

और दूसरे ही दिन मैं भी तुम्हारे पास पहुंच गया था। तुम्हें वह घटना अभी तक याद होगी ?

तुम एक बड़ी-सी चट्टान पर खड़ी थी, जैसे किसी का इन्तज़ार हो और जब मैं अचानक सामने आ गया तो तुम खुशी में नाच उठी थी।

— तुम आ गये ?

— हाँ, मैं भी आ गया।

और फिर तुम इतना हंसी थी कि आस-पास की पहाड़ियां भी जैसे हंसने लगीं। तुम्हारी पलकें खुशी से सजल हो उठी थीं।

आज बीता जीवन फिल्म की तरह मेरी आंखों के सामने से गुज़र रहा था। दस वर्ष में मैंने तुम्हें एक बार भी याद न किया। याद भी कैसे कर सकता था, मेरा और तुम्हारा रिश्ता ही क्या था ? तुम मेरी क्या लगती थी ? मैं तुम्हें पत्र भी क्यों लिखता ? पत्र तो सदा अपनों को लिखे जाते हैं। ऐसा भी नहीं कि मैं तुम्हें भूल गया था। मैं सदा तुम्हारे लिए दुआयें मांगता रहा हूं कि तुम सदा सुखी रहो, फूलो-फलो। इससे अधिक मैंने अपने भगवान् से कुछ नहीं चाहा ! कुछ नहीं माँगा। मैं अपनी और दुनिया की सुध-बुध खो कर, अपने बीते जीवन को कुरेदे जा रहा था। बीते दिन, जीवन के वे सुहावने दिन, जिन के सहारे यह जीवन रींगता जा रहा

है, और जो जीवन ऐसे ही रींगते-रींगते एक दिन दम तोड़ देगा, फिर कोई दूसरा इसी कहानी को दुहराएगा।

यह कहानी तो सदा जवान रहेगी। इस क़हानी के दीप में सभी अपने-अपने हिस्से का तेल डालते चले जायेंगे। यह कहानी सदा चमकती रहेगी।

आज बारह बरस के बाद मैं फिर उसी डाकबंगले में तुम्हें देख रहा था, वही हवाएं, वही रंगीनियां, वही सब कुछ, वही चील के पेड़ थे, वही नाला था। यदि कोई अन्तर था तो केवल इतना कि उस समय तुम एक लड़की थी। कालेज की एक चंचल, चपल और तेज़-तरार लड़की और आज तुम एक औरत थी—एक बीबी थीं—एक मां थी।

मुझे वह दिन भी याद है जब तुम चील के तने पर चाक़ू से अपना नाम खोद रही थी और फिर अपना नाम खोदने के बाद तुम ने मुझ से कहा था—मोहन, तुम भी अपना नाम खोदो न।

फिर चील के तने पर "लता—मोहन" दोनों नाम चमकने लगे थे, जो आज भी चमक रहे थे। यह नाम कब तक खुदे रहेंगे? कब तक इन नामों की कहानियां दुहराईं जाती रहेंगी?

रात अधिक बीत चली थी।

मेरा मस्तिष्क बिल्कुल खाली हो चुका था। बीते जीवन की सारी कहानी मेरी नज़रों से गुज़र गई थी। कुछ भी शेष न बचा था। केवल एक कसक शेष रह गई थी, और कुछ भी नहीं रह गया था।

मैं चुपके से उठा और डाक-बंगले की ओर चला गया।

सुबह जब मेरी आंख खुली तो मैंने देखा कि तुम अपने पति के साथ उसी चील के पेड़ के पास खड़ी थी, जहां हम दोनों के नाम खुदे हुए थे।

तुम्हारे पति ने चौंकते हुए कहा था—लता डारलिंग, हम से पहले भी कोई "लता—मोहन" यहां आए थे। कितनी विचित्र बात है! यह देखो उनके नाम!

—यह दुनिया तो कई लताओं और मोहनों से भरी हुई है। तुमने नीले आकाश की गहराइयों में देखते हुए कहा—लता और मोहन तो यहां क़दम-क़दम पर मिलते हैं।

फिर तुमने चाक़ू से चील के तने पर अपना पहला नाम खुरच कर उसके नीचे नया नाम खोद दिया था।

तुम्हारे पति ने पूछा था—यह क्यों?

तुमने उत्तर दिया था—हो सकता है यह लता अपने मोहन का दिल तोड़ दे परन्तु आपकी लता तो अपने मोहन का दिल नहीं तोड़ेगी।

तुम्हारे पति की समझ में नहीं आई थी यह बात।

उसने चुपके से तुम्हारे नाम के साथ अपना नाम खोद दिया था और तने पर मोहन के नीचे नए नाम "लता—मोहन" चमकने लगे थे—एक नई कहानी एक नया नाम।

मुझे रत्ति भर भी खेद नहीं हुआ।

तुमने मेरी लता की मेरे ही सामने हत्या कर दी।

इतने में चौकीदार ने आकर कहा—बीबी जी, सामान मैं कार पर रख आया हूं।

तब तुम्हारे पति ने कहा—लता डारलिंग, तुम बिल चुकताकर आओ, मैं कार के पास चलता हूं।

मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा। बारह बरस के बाद मैं और तुम बिल्कुल आमने-सामने आ गए थे। मैं तुम से कुछ कहना चाहता था। मुझे तुम से बहुत कुछ सुनना था। बारह बरस में तुमने क्या-क्या किया? क्या तुम्हें मेरी याद कभी भूले से भी नहीं आई? तुमने मुझे अपने विवाह पर क्यों नहीं बुलाया? तुमने चुपके से विवाह रचा लिया और मुझे उस समय पता चला जब तुम्हारे आंगन में शहनाइयां बज चुकी थीं। शहनाइयों की गूंज में मेरा दिल डूब गया था। फिर मैं वहां से भाग गया। बहुत दूर, तुम से बहुत दूर, अपने शहर से बहुत दूर।

आज बारह बरस बाद मैं फिर अपने शहर आया था और अतीत की स्मृतियां सजीव करने यहां बटोत चला आया था। बीते युग की निशानियां ढूंढने! और भाग्य ने तुम्हें भेज दिया, एक सजीव निशानी।

मैं तुम से बहुत कुछ कहना चाहता था और तुम मेरे सामने आ गईं थी।

मैंने मुस्कराते हुए कहा—लता।

—लता!

तुमने मेरी ओर देखा लेकिन तुम चुप रही।

मैंने फिर कहा—लता, मैं हूं मोहन।

तुमने रूखा-सा उत्तर दिया—मिस्टर, आप को धोखा हुआ है, मेरा नाम लता नहीं है।

और तुम बिल चुकता करके धीरे-धीरे सड़क की ओर जाने लगी। तुम्हारा पति पुकार रहा था—लता, आओ भी, देर हो रही है। और तुम वहीं से चिल्लाई, आती हूं, मोहन डारलिंग।

और मुझे लगा जैसे पर्वत अपनी जगह से हिल रहा है।

तुम्हारी सुन्दर कार मोड़ों में गायब हो गई थी।

अब मेरा बटोत में रहना बेकार था। मैंने अपना सामान बान्धा और बिल चुकता करने के लिए मैनेजर के पास गया तो मैनेजर ने कहा—मिस्टर, आप का बिल भी श्रीमती जी चुकता कर गई हैं।

यह सुनकर मैं सोच के समुद्र में डूब-सा गया।

●

कैसे लिखते थे!

● **बाल्ज़ाक**

लिखने के लिए शानदार कमरा, सुन्दर पर्दे, मेज़, पांच छः रंग की स्याहियां, एक शमादान, जिस में छः जलती मोमबत्तियां! मेज़ पर आकर ये सो जाते थे और फिर आधी रात को जगकर लिखना आरम्भ कर देते थे।

● **पेयरे लोनी**

इन का विचार था कि उच्च विचारों के लिए ऊंची जगह बैठना चाहिए। अतः इन्होंने अपने आंगन में एक नकली ऊंचा पेड़ खड़ा कर रखा था; जिस की ऊंची डाल पर बैठ कर ये लिखा करते थे।

● **विक्टर ह्यूगो**

इनके साथ यह कठिनाई थी कि यह बैठ कर नहीं; खड़े होकर ही लिख सकते थे। इन्होंने कन्धे तक ऊंची एक मेज़ बनवाई थी, उसी के सहारे खड़े होकर इन्होंने जगत-प्रसिद्ध उपन्यास लिखे।

● **प्रेमचन्द**

जैसा सादा इनका जीवन था, वैसा ही सादा लिखने का ढंग। चारपाई पर पड़े लिखते रहते। न एकान्त की ज़रूरत और न ही 'मूड' के लिए कोई निश्चित समय।

अँगार हूं मैं !

मनसा राम शर्मा 'चंचल'

राख में लिपटा हुआ अंगार हूँ मैं ।
समझना मत भस्म का अम्बार हूँ मैं ।।

धधकती है इस हृदय में एक ज्वाला ।
वेदना को प्रिय समझ कर है सम्हाला ।
है हलाहल प्रिय मुझे भाती न हाला ।

मिट चुके अरमान, पर साकार हूँ मैं ।
राख में लिपटा हुआ अंगार हूँ मैं ।।

थी कभी लाली बदन पर अब नहीं है ।
चमकती आभा नयन में अब नहीं है ।
है रुदन इक शेष पर सिहरन नहीं है ।

जल चुके अरमान का आधार हूँ मैं ।
राख में लिपटा हुआ अंगार हूं मैं ।।

एक झोंके तक बचे हैं प्राण मेरे ।
युग-युगों से सुप्त हैं मृदुगान मेरे ।
हैं समेटे इक कसक आव्हान मेरे ।

है नहीं अधिकार जिस को, प्यार हूँ मैं ।
राख में लिपटा हुआ अंगार हूँ मैं ।।

•

कर सका कुछ भी नहीं पर !

हो गया जीवन अधूरा,
मिल गया अभिशाप पूरा,
प्राण में ज्वाला जला कर,
मोम-तन सा घुल रहा हूं।

शूल पर मैं तुल रहा हूँ॥

निर्बलों की करुण आहें,
हृदय में ज्वाला बहायें,
आज भी प्रति शब्द उन का,
मैं अकिंचन सुन रहा हूँ।

शूल पर मैं तुल रहा हूँ॥

दे सका सुख लेश किस को,
कर सका सानंद किस को,
तप्त प्राणी वृन्द के ऋण-
भार से व्याकुल रहा हूँ।

शूल पर मैं तुल रहा हूँ॥

तड़पते उन शिशु जनों का,
करुण क्रन्दन सुन चुका हूँ,
लड़खड़ाते भिक्षुकों की टीस,
से भी हिल चुका हूँ,
कर सका कुछ भी नहीं पर,
हाय, कितना जल रहा हूं।

शूल पर मैं तुल रहा हूं॥

●

गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

त्रिमूर्ति के दर्शन

● श्यामलाल शर्मा

चण्डीगढ़ और वाराणसी की यात्रा में पद्मश्री डा० सिद्धेश्वर वर्मा तथा डा० वासुदेव शरण अग्रवाल जी के साथ सम्पर्क तीर्थ-यात्रा के तुल्य ही सिद्ध हुए हैं। इन दोनों महान् आत्माओं के निवास स्थल, एक पवित्र तीर्थ से कम नहीं हैं। मोह-ममता, ईर्ष्या द्वेष तथा सांसारिकता के वातावरण से दूर, तप:पूत ये स्थान शब्द-ब्रह्म के उपासक तथा भाषा और साहित्य के किसी भी क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले साधक के लिए बड़े आकर्षक हैं। ७८ वर्ष की आयु में भी १८ घण्टे प्रतिदिन कार्यशील रहते हुए डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी की शब्द-ब्रह्म की उपासना दर्शनीय तथा अनुकरणीय है। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण शब्द-ब्रह्म की उपासना में व्यतीत होता है। शब्द की उत्पत्ति व्याकरण, उच्चारण, तुलनात्मक अध्ययन, संगीत-छन्द तथा इस विषय के अन्य पहलुओं पर अध्ययन, चिन्तन और मनन के अतिरिक्त वहां अन्य कोई चर्चा नहीं होती। "अद्वेष्य: सर्व भूतानां मैत्र: करुण एव च" संसार के किसी भी मानव, जीव-जन्तु अथवा किसी भी वस्तु के लिए प्रेम, उसको दिव्यकृति समझ कर उसका सम्मान जीवन का परम लक्ष्य है। सायंकाल सात से नौ बजे तक डा० साहब मौन रह कर मानस पटल को सभी तरह के विकारों से शून्य करने का प्रयत्न करते हैं। पार्क में उठ रही झींगुर की ध्वनि में उस 'नाद' का अनुभव किया जाता है और ठीक नौ बजे बिस्तर पर लेटते ही निद्रादेवी जब उन्हें अपनी गोद में ले लेती है तो देवता भी मानों स्पर्धा की दृष्टि से उन्हें देखते हैं।

—क्या आप कोई पूजा-पाठ, नित्यकर्म या जप अनुष्ठान करते हैं ?

यह प्रश्न पूछने वाले एक सज्जन को बशीर कानपुरी का शे'र सुनाते हुए कहने लगे:—

मेरा हर नफ़स एक सजदा है ज़ाहिद,
मेरी ज़िन्दगी ही मेरी बन्दगी है।

—जीवन का एक एक क्षण शब्द ब्रह्म की उपासना में, सरस्वती की आराधना में व्यतीत हो रहा है। इससे बढ़कर पूजा-पाठ और क्या हो सकता है ?

एक दिन कहने लगे—इस संसार में इतनी सुन्दरता है कि बुलबुल की भान्ति मधुर कण्ठ से उसकी प्रशंसा होती रहे, अपनी मधुरता से दूसरों को मिठास बंटती रहे, तो भी जी नहीं भरता। सुन्दरता की सेवा नहीं हो सकती, या अपनी दृढ़ तथा मूक भावना से फूल की भान्ति अपने सौन्दर्य का प्रसार हो। सुन्दरता का मूक दान हो।

साधना के किसी भी पथ पर चल कर प्रेम और सौन्दर्य का प्रसार किया जा सकता है। डोगरी भाषा के अनुसन्धान के लिये भी इन्हीं भावों की आवश्यकता है। सब भाषाओं के लिए आदर स्नेह और अपनत्व की भावना रखना, उनमें अपना रूप देखना भाषा की उन्नति के लिये उपयुक्त है। डोगरी भाषा के पंजाबी, राजस्थानी, कश्मीरी, हिन्दी और संस्कृत के साथ कई शब्दों में, सादृश्य और विषमताएं बताती हैं कि कभी इन पांचों की सम्मिलित एक सशक्त धारा रही होगी, जिसके ये भिन्न भिन्न रूप हैं। इस लिये डोगरी भाषा के साधक के लिये इन पांचों भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। इसी प्रकार डोगरी के सर्वांगीन अध्ययन के लिये साहित्य, भाषा-विज्ञान छन्द-शास्त्र, उच्चारण-शास्त्र और संगीत का ज्ञान भी अपेक्षित है।''

डा० साहब के सम्पर्क में अठारह दिन रह कर मैंने ''उत्तरी वायु और सूर्य'' (The wind and the sun) की जगद् विख्यात् कहानी को अपनी वैयक्तिक भाषा (Idiolect) में उच्चारण शास्त्र की दृष्टि से अनुसन्धान किया है। इस कहानी को प्रदेश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न व्यक्तियों से सुनने, सादृश्यतायें और विषमतायें देखने तथा डोगरी भाषा के ध्वन्यात्मक तत्वों की मूलभूत समताओं को ढूंढ निकालने का विस्तृत कार्य अपने सामने है।

वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय में वैदिक अध्ययन के आचार्य, चित्रकला तथा वास्तुकला के अध्यक्ष, तथा लोक-साहित्य में हिन्दी की विपुल सम्भावनाओं के द्रष्टा तथा मूक तपस्वी डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का निवास उपयुक्त स्थान पर ही है। जीवन में कितना गाम्भीर्य, कितना विस्तृत अध्ययन, कितनी सूक्ष्म दृष्टि तथा कितनी साधना,

तपस्या और धैर्य ढल कर पुन्जीभूत हुए हैं। इसकी साक्षात् मूर्ति डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जी के तेजस्वी परन्तु कृश विग्रह में देखी जा सकती है। संस्कृत, कला तथा लोक-साहित्य के यह गम्भीर अध्ययन कर्त्ता, हिन्दी की स्मृद्धि तथा उन्नति, लोक-साहित्य के अध्ययन में देखते हैं। भूमि, जन और संस्कृति के विशाल क्षेत्र अछूते पड़े हैं; विदेश में विभिन्न जन-पदों के अनुसार उनका सूक्ष्म अध्ययन हिन्दी को सार्वदेशिक सत्ता प्रदान करेगा। परन्तु इस अध्ययन के लिये भूमि को माता मानने की पवित्र भावना का तथा अपने आप को उसका पुत्र मानने की गर्व भावना का आधार होना परमावश्यक है। जब तक हम भूमि को अपनी माता नहीं मानते तब तक उसके कण कण में दिव्य आत्मा के दर्शन नहीं हो सकते। गांव गांव में, पर्वतों में, नदियों की घाटियों में, मैदानों में बस्तियों में जहां भी मानव बसते हैं वहीं लोक है, वहीं लोक-वार्ता शास्त्र है। भारत में भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से लोक-वार्ता शास्त्र में बहुत से क्षेत्र हैं। सौभाग्य से इन प्रदेशों में लोक-वार्ता शास्त्र में बहुमुखी समता है। साम्य के साथ साथ भेद भी हैं। इनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। लोक वार्ता शास्त्र के अध्ययन के लिये निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता है :—

प्रथम, सामग्री का संकलन ; दूसरे, उसकी व्याख्या या अर्थापण (अर्थात् उसका अर्थ समझना) और तीसरे, उस सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन। इन तीनों चरणों में लोक वार्ता के अध्ययन का क्रम परिपूर्ण होता है। यही भारतीय लोक वार्ता शास्त्र का त्रिविक्रम रूप है।

यह नया विज्ञान है। प्राय: सभी देशों में इसकी ओर ध्यान दिया जा रहा है। इस के लिए एक ओर तो विश्वविद्यालय और दूसरी और स्वतन्त्र शोध संस्थान Folk Lore Research Institutes काम कर रहे हैं। आधुनिक दृश्य और श्रव्य यन्त्रों, मूवी सिनेमा, टेप रिकार्ड आदि की आवश्यकता है। आवश्यकता है कि भारतीय शासन की ओर से एक केन्द्रीय लोक-वार्ता शोध संस्थान Central Folk Lore Research Institute की स्थापना की जाए। जो इस प्रकार के शोध और अध्ययन को संगठित और उत्साहित करे।

राजस्थान में लोकवार्ता शास्त्र का काम हुआ है। 'वरदा' 'मरु भारती', 'राजस्थानी शोध पत्रिका' आदि के माध्यमों से श्री कन्हैया लाल, नरोत्तम शास्त्री आदि विद्वानों ने तथा उत्तरी भारत में श्री कृष्णदेव उपाध्याय, डा० अम्बाप्रसाद, श्री हरिहर प्रसाद गुप्त, डा० सत्येन्द्र, श्री त्रिलोचन पाण्डेय आदि ने लोक वार्ता शास्त्र पर काम किया है : स्वर्गीय रामनरेश त्रिपाठी, स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन तथा श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने इस शास्त्र को निखार देने की चेष्टा की है। परन्तु देश की विशालता और विविधता को देखते हुए यह काम आटे में नमक के बराबर है।

क्षेत्र बड़ा विशाल है, अतः पर्याप्त साधकों की आवश्यकता है, जो वनस्पतियों, पशु पक्षियों तथा अन्य प्राणियों से परिचय प्राप्त करें। तद् सम्बन्धी शब्दावली, मुहावरे, लोकगीत, लोक नृत्य, लोक संगीत आदि सब वस्तुओं को इकट्ठा करें और लोकवार्ता शास्त्र की धीरे धीरे नष्ट होती जा रही इस सम्पति को बचा लें।

प्रत्येक वस्तु के लिये विशेष शब्द है, यह लोकवार्ता का सिद्धान्त है। परन्तु इन मेलों, उत्सवों, पर्वों, पूजाओं धार्मिक मान्यताओं से परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता है। सर्वत्र फैला हुआ सौन्दर्य अनन्त है। "प्रत्यक्ष दर्शी लोकानां सर्व दर्शी भवेन्नरः (महाभारत) तथा "चारिकं चरित्वा" पद यात्रा करके सिद्धान्तों पर आचरण की ज़रूरत है। सौन्दर्य को देखने वाली आंख चाहिये और चाहिए खोज की लगन।

वाराणसी की दिव्य विभूति महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज जी के दर्शनों की उपलब्धि भी इस यात्रा का महोत्सव रही है। भारतीय संस्कृति के दिग्दर्शक, वयोवृद्ध तपस्वी कविराज जी से प्रश्न किया, "क्या विद्या प्राप्ति प्रयत्न से सम्भव है अथवा गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है? उन्होंने उत्तर दिया,—"ईश्वर की कृपा दृष्टि चाहिए। अपना जन्म तक अपने अधिकार की बात नहीं। जैसे सूर्योदय अपने बस की बात नहीं। बादल आगे आकर सूर्य को ढक लें इसमें सूर्य का दोष नहीं। इसी प्रकार अज्ञान बुद्धि पर छाया रहे तो बुद्धि का दोष नहीं। भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। उसके अनुग्रह से बुद्धि स्वच्छ हो तो ज्ञानोदय होता है। और जब ज्ञानाग्नि से प्रारब्ध कर्म भस्म हो जाते हैं तो शिवत्व प्राप्त होता है।"

डा० सिद्धेश्वर वर्मा, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, तथा महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज, इस त्रिमूर्ति के दर्शन और कल्याणप्रद आशीर्वाद की प्राप्ति जीवनोत्कर्ष की प्राप्ति है।

●

—"ईसा के बलिदान की सदियों पुरानी कथाओं तक मेरी दुर्बल, थकी और बीमार कल्पना नहीं पहुँच सकती। धर्म-परोहित, तुम मुझे इतने दूर पर बसे भूतकाल के उन खण्डहरों में भटकने के लिए क्यों ले जाते हो, जिन पर कई सौ वर्षों की धूल एकत्र हो चुकी है और यहां शायद ज़िन्दगी की कोई निशानी आज शेष नहीं रही है। मेरे उखड़ते विश्वास की जड़ें उस दूर के धुंधले अतीत तक पहुँच कर पोषण प्राप्त कर सकने में समर्थ हैं। मेरी चेतना इस जगत की प्रवंचनाओं से ऐसी प्रताड़ित है कि वह इस दुनिया में नहीं इस नगर में नहीं, बल्कि मेरे पड़ोस में ही : मेरे आस-पास के इन परिचित नर-नारियों के भीतर ही : ईसा के त्याग, बलिदान एवं सहिष्णुता के चमत्कार देखना चाहती है। क्या तुम बतला सकते हो?"

—टी० एस० इलियट

…कहानी कही नहीं जाती, अपने आप बोलती है--सहस्र सहस्र जीभों से…

—मोपासां

शिव की रात

● पुष्करनाथ

आज शिव की रात है। शहर में लोग नफेरियां और शंख बजा रहे हैं। हंस खेल रहे हैं। शिव की आरती हो रही है, भजन-कीर्तन चल रहा है।

आज शिव जी ने पार्वती के साथ ब्याह रचाया है। आज ही पार्वती ठुमक-ठुमक कर चलती हुई, घूंघट की ओट में शरमाती हुई कैलाश-पति के घर आई है। आज ही शिव ने शक्ति के संग कैलाश के हिम-ढके तुङ्ग, शिखरों पर प्यार किया है—एक अजर अमर प्यार।

और गांव की पारो अपने झरोखे में बैठी दूर गगन की विशाल गोद में झिल-मिल करते दीपों के झुरमट में कैलाश के उस शिखर को ढूंढ रही है जहां शिव और पार्वती बैठे प्रेमालाप कर रहे हैं।

अमावस की रात में जब झींगुर एक तराना छेड़ देते हैं और जुगनू अपनी मशालें प्रदीप्त किये सामने वाली पहाड़ी पर चमक चमक जाते हैं। जब अखरोट की शाखाओं से शीत पवन के झोंके सरसरा कर लजाते हुए पहाड़ी की छाती को गुदगुदा जाते हैं—जब किसी चरवाहे की बांसुरी की मोहक तान वातावरण को चीरती हुई पहाड़ी की चोटी पर बने हुए मंदिर में शिव-प्रतिमा के कानों में घंटियां बजाती है। नवकिशोर बालाओं की कोमल और कंवारी कंठ-ध्वनियां ढोलक की थाप के साथ उभर कर मन के भीतर उतर जाती हैं। इस रात का सा सौन्दर्य, प्रेम और माधुर्य कहां होगा विवाह की रात में ! फिर भी लोग कहते हैं कि विवाह की रात जवान होती है;

प्यारी होती है। और गांव की पारो नभ की कालिमा और उसके अनन्त विस्तार में डूब कर सोचती है--यह रात जवान कैसे हो सकती है ? पारो एक लजीली और भावुक-हृदय तरुणी है, जैसे नदी के कूल पर झुकी गुलाब की टहनी, जैसे सफेदे के तने से लिपटी हुई इश्क-पेचां की बेल, जैसे नर्गिस का कोमल-कोमल वृन्त।

उसके हाथों से उपलों की बू आती है जो वह अपनी छोटी सी अंगनाई में दिन भर थापती रहती है। उसके पैरों में बड़ी स्फूर्ति और दृढ़ता है क्योंकि वह रोज़ नंगे पांव खेतों की मेंडों को पार करती हुई अपने बापू के लिए रोटी ले जाती है। उसका केश-कलाप रूखा, घना और लम्बा है क्योंकि वह प्रतिदिन नीले झरने पर जाकर मुंह अंधेरे नहाती है, जब भोर के तारे को छोड़ कोई दूसरा देखने वाला नहीं होता। उसकी अंगुलियां चुगताई के चित्रों में अंकित छवियों जैसी लम्बी और चिकनी हैं। वह रोज सवेरे अंगनाई में बंधी हुई गाय दुहती है और दूध दुहते समय कोई गीत गुनगुनाती है। उसकी बड़ी बड़ी आंखें गहरी नीली हैं शायद इस लिए कि वह दूर दूर तक फैले हरे खेतों को अपलक निहारा करती है। उसके गांव में देखने को यही कुछ तो है। और किसी किसी दिन बापू के हाथों में एक रुपये का सरसराता नोट देख कर सहसा उसकी आंखों की चमक बढ़ जाती है, इस लिए कि उसके बापू के हाथ में नोट कभी कभी ही दिखाई देता है।

लेकिन आज पारो गगन के विस्तार में कैलाश की ऊंचाइयां खोजने का प्रयास कर रही है। क्योंकि आज शिव के विवाह की रात है और विवाह की रात का नाम सुन कर जवान लड़कियों के दिलों की धड़कनें प्रायः बढ़ जाया करती हैं। आज इसका बापू निमक, मिरच और गुड़ लाने गया है और मां चूल्हे के पास बैठी ऊंघ रही है। पारो चाहती है कि वह भी खिड़की के साथ सिर टेक कर ऊंघने लगे। लेकिन नहीं, आज की रात ऊंघने के लिए नहीं आई है।

पारो को याद आया जब एक बरस पहले रुक्मिणी का विवाह हुआ था तो उसकी सहेलियां और वह रात भर गाती रही थीं। उन्होंने रुक्मिणी को खूब गुदगुदाया था, उसकी भरी भरी बाहों में चुटकियां ली थीं और वह 'उई मरी' कहते कहते निढाल हो गई थी।

—लो, देखो डर लग रहा है, रानी को—एक सहेली ने उसको कुहनी मार कर कहा था और वह बिल्कुल सिमट गयी थी—लजा गयी थी। उसके भाल पर मोतियों जैसे स्वेद-बिन्दु उभर आए थे--जलस्रोत में उबलते हुए पानी के बुलबुलों जैसे।

—सच, मुझे डर लग रहा है आज—उसने इस तरह कहा था कि इस पर सब की सब खिलखिला कर हंस पड़ी थीं।

--जब अपने राजा के साथ चलने लगोगी तब पूछेंगे--किसी ने कहा था।

तब पारो ने सोचा था कि सच-मुच डर लग रहा होगा बेचारी को, क्योंकि उस समय स्वयं उसका अपना हृदय धक धक कर रहा था। उसके गालों पर आग सी सुलग रही थी। उसकी कनपटियों पर मीठा मीठा साज़ सा बज रहा था और जब रुक्मिनी का दूल्हा घोड़ी पर बैठ कर आया था तो वे सब सहेलियां उसे छिप छिप कर देखने लगी थीं।

—हाय गोरी, कितना बांका है, रुक्मिणी का दूल्हा—एक ने कहा था।

—घोड़ी पर यों सज रहा है जैसे तहसीलदार---दूसरी बोली थी और जब दूल्हे ने सेहरे को थोड़ा सा हटाया था तो—अरी इसकी एक आंख तो भींगी है—किसी एक के ऐसा कहने पर सब का उल्लास फीका पड़ गया था ; सब चेहरे उदास हो गए थे।

—निगोड़ी, बुरे बचन मत बोल—एक डांट पड़ी थी और पारो रुक्मिणी के दूल्हा को देखते हुए अजीब विचारों में खो गई थी। उसने सोचा था कि आज की रात रुक्मिणी खूब रोयेगी। आज वह गाँव से जा रही है न !

उस रात जब पारो सोने लगी थी तो खाट पर बैठे हुए उसके मां और बापू बातें कर रहे थे :

—इस नन्दवा को क्या हो गया, पारो की मां, लड़का देखे बिना ही व्याह रचा बैठा—बापू कह रहा था।

—निगोड़ा सिरफ काना ही नहीं उसकी एक टांग भी छोटी है—मां ने कहा था।

—और उमर भी तो चालीस से ऊपर ही है।

—और पास खेत तक नहीं, जिमींदार की मजूरी करता है।

—रुक्मिणी का बापू कितना कठोर है; चांद सी बिटिया किसके पल्ले बांध दी है। हे राम !

—और क्या करे बेचारा ? मैं कहती हूं, पारो के बापू, रुपया पैसा पास हो तो लड़का भी अच्छा मिल जाता है। सारे गुण तो पैसे से मिलते हैं, पैसे से !

—भगवान मेरी लाज रखना; मेरी भी बेटी है—उसके बापू ने भर्राई आवाज़ में कहा था।

और पारो किसी अपरिचित विचार-धारा में बह गई थी और उसकी आंखों से बह कर जाने कितने आंसू रात की कालिमा में विलीन हो गये थे।

यह व्याह की रात भी कितनी भयानक होती है। दूल्हा कितना अजीब और यूं ही सा होता है। पर आज रुक्मिणी का दूल्हा देख कर उसका हृदय अचानक उछल कर किसी गहरी अंधेरी खाई में जा गिरा था।

उसने सोचा था रुक्मिणी बेचारी क्या करे ? उसने भी अपने नन्हें से मन में दिये जला रखे थे । उसने भी आज की रात के लिये अपने हाथों को मेंहदी से संवारा था । उसने भी आज की रात के लिये सितारों से चमक मांगी थी; चांद से उजाला उधार लिया था, परन्तु......।

और इन्हीं विचारों में डूबी डूबी पारो की आंख लग गई थी । दिन होने पर जब वह उठी थी तो उसका अंग अंग दुःख रहा था । किन्तु कुछ ही महीनों में वह रुक्मिणी और उसके दूल्हा को भूल गई थी । उसे घर के काम-काज ही से कब छुट्टी मिलती थी जो वह ऐसी बातें सोचने बैठ जाए ।

खिड़की पर सिर रखे पारो सहसा चौंक गई । उसने देखा उसकी मां अब भी चुल्हे के पास बैठी ऊंघ रही थी ।

सुना है शहरों से लोग ब्याह करने मोटरों में बैठ कर जाते हैं । उनके आगे आगे बाजा होता है, रोशनियां होती हैं और भी कई कुछ होता है । लेकिन मैं क्या जानूं, कभी शहर गयी भी तो नहीं हूं—उसने सोचा । फिर उसे याद आया वह दिन भर जंगल से लकड़ियां चुन कर आई थी और थकी थकी सी थी । उसका अंग अंग पसीने से भीगा हुआ था, पर किया क्या जाये । यदि लकड़ियां न लाई जायें तो रात को घर में चूल्हा ही न जले और न जले चूल्हा और न पके रोटी ।

उसने घर की देहलीज़ पर पांव रखा ही था कि सहसा ठिठक गयी थी । अंदर बापू उसकी मां से कह रहा था—पारो की माँ, बिटिया के लिये शहर से एक रिश्ता आया है ।

—रिश्ता आया है, कहां से ? लड़का कैसा है ? घर कैसा है, उसका ? उसकी मां एक ही सांस में कितने सवाल कर गयी थी ।

—अच्छा घराना है, लड़का ऊंची जमायत में पढ़ता है और कहते हैं लड़का है भी बड़ा छबीला ।

—लेकिन शहर तो बहुत दूर होता है । बिटिया को शहर में ब्याह दोगे तो लोग क्या कहेंगे और फिर एक ही तो बिटिया है अपनी—पारो की मां ने कहा था ।

—शहर कोई बहुत दूर भी तो नहीं और लोग भी भला क्या कह सकते हैं ?

—पर मैं तो चाहे कुछ हो जाए, अपनी बिटिया को शहर में कभी न ब्याहूंगी-मां ने कड़ा प्रतिवाद किया था ।

और पारो का दिल बहुत दुःखा था । उसके मन में शहर देखने की लालसा थी । वह चाहती थी उसका दूल्हा भी मोटर में बैठ कर आये । उसके आगे भी बहुत सी रोशनियां हों और वह भी अपनी सहेलियों के बीच बैठी मान कर सके । लेकिन मां ने

उसकी सारी उमंगों पर पानी फेर दिया था। उसे अपनी मां पर बहुत गुस्सा आया था। शाम को उसने बापू के माथे पर मालिश की थी और विचारों में खो गई थी। यह मां भी अजीब है, शहर भी कितना दूर होता है। बापू तो शहर से एक दो दिन ही में लौट आते हैं। उसके मन में रह रह कर बापू के बोल गूंज रहे थे—लड़का ऊंची जमायत में पढ़ता है और कहते हैं, बड़ा छबीला है। उसके दिल में गुदगुदी होने लगी थी, अंग अंग थिरक उठा था।

पारो ने पलक झपकी, मां अब भी ऊंघ रही थी और चूल्हे की राख में कुछ चिनगारियां चमक रही थीं। पारो के मन में फिर विचार आया कि यह सब इस लिये है कि आज शिव की रात है। वह उठ खड़ी हुई और मां के पास चली गई।

—मां, रात बहुत हो गयी है।

—पर पारो के बापू अब की फसल पर पारो की बात ज़रूर कहीं पक्की कर दो! पारो की मां ने कदाचित् सपने में बड़बड़ाते हुए कहा था। पारो लजा गयी। यह मां भी कैसी है—बैठी बैठी सपने देखती है। वह फिर आकर खिड़की के पास बैठ गयी। आज उसका मन सोने को बिल्कुल नहीं चाह रहा था। आंखों से नींद उड़ गयी थी।

बापू कहते थे कि जब शिवजी पार्वती को ब्याहने गए थे तो उन्होंने एक विचित्र स्वांग रचाया था। देख कर पार्वती की मां अचेत होकर गिर पड़ी थी। पर ऐसा भी क्या स्वांग रचाया होगा उन्होंने। रुक्मिणी के दूल्हा ने तो कोई स्वांग नहीं रचाया था। फिर उसकी मां क्यों न अचेत होकर गिर पड़ी?

और उसे याद आया कि जिस दिन रुक्मिणी गांव लौट आयी थी, तब उस में कितना परिवर्तन आ गया था। उसकी आंखों में आंसुओं का सागर उमड़ा पड़ता था। उसकी सब चूड़ियां टूट गयी थीं। उसकी मांग का सिंदूर भी मिटा हुआ था। उस दिन पारो का दिल कांप गया था। उसकी मां ने कहा था—रुक्मिणी का दूल्हा मर गया है और अब वह विधवा हो गयी है। कितना बुरा और भयानक है यह विधवा शब्द। आखिर ये दूल्हे क्यों मर जाते हैं? और अपने साथ चूड़ियों की खनक और मांग का सिंदूर भी ले जाते हैं।

वह भी रुक्मिणी की धंसी हुई आंखें, पिचके हुए गाल देख कर, स्तब्ध रह गयी थी। उसकी उभरी हुई हड्डियां और पीला मुंह देख कर वह कांप गई थी। और उस रात भी वह बहुत रोई थी।

लेकिन नहीं, शिवजी कभी नहीं मर सकते। वह तो अमर हैं। फिर रुक्मिणी का दूल्हा क्यों मर गया था। शिवजी भी तो दूल्हा हैं। और इन्हीं विचारों में उसने सारी रात आंखों ही आंखों में काट दी थी; और बुरे बुरे विचारों से चौंक

चौंक गयी थी। इस पर भी लोग कहते हैं विवाह की रात प्यारी होती है। पहले तो सब अच्छा होता है लेकिन बाद में सब बदल जाता है। दूल्हा काना और लंगड़ा होता है और सारे सुनहले महल धड़ाम से नीचे गिर जाते हैं। बरसों से संजोई कामनायें मर जाती हैं। आशायें राख हो जाती हैं। और फिर भी आदमी है कि जिए जाता है। और इतने पर भी तो बस नहीं होती। इसके बाद दूल्हा किसी रात के अंधेरे में मर जाता है—और अच्छा भला जीवन एक खण्डहर बन जाता है। उसने सोचा और सिर से पांव तक कांप उठी। मां की ओर देखा तो वह अब भी ऊंघ रही थी। ओह, यह मां कब जागेगी।

बाहर आकाश पर तारे अब भी टिमटिमा रहे थे जैसे चूड़ियों के बहुत से टुकड़े काले फरश पर चमक रहे हों उसे कल का दिन याद आया। वह सवेरे-सवेरे अंगनाई में गाय का दूध ले रही थी। दूध की सफेद सफेद धारें मिट्टी के घड़े में भीनी भीनी सरसराहट से गिर रही थीं। और वह रोज़ की तरह गुनगुना रही थी कि अन्दर से बापू और मां की आवाज़ें सुनाई दी थीं :

—पर तुम सुनती क्यों नहीं। वे लोग पैसा धेला कुछ भी तो नहीं मांग रहे हैं। और आजकल अच्छा लड़का रुपये बिना कहां मिलता है ?

—तुम कहते हो कोई चालीस ब्यालीस का होगा। अपनी बिटिया को तो अभी चौदहवां बरस ही लगा है।

—पर अब किया भी क्या जाए ?

—घराना कैसा है ? मां ने थकी हुई आवाज़ में पूछा था।

—अच्छा ही है। थोड़े से खेत अपने हैं। फिर मज़ूरी भी तो करते हैं।

—लड़के का नाक-नक्शा तो ठीक है न ?

—ठीक ही कहते हैं—अब तो हमारे हां कहने भर की देर है और हम भी कब तक जवान बेटी घर में बिठाए रखें ?

और पारो के हाथ से दूध का घड़ा गिर कर चकनाचूर हो गया था, सफेद सफेद गरम गरम दूध कच्चे फरश पर टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनाता हुआ इधर-उधर बिखर गया था। उसके मन में एक पूर्व-परिचित पीड़ा जाग उठी थी। और फिर उसकी आंखों से दो आंसू सहसा गालों पर लुढ़क आए थे।

पारो ने अंतिम बार आकाश की ओर देखा। अब उसके विवाह की रात भी आने वाली थी। किन्तु वह ऐसी विवाह की रात नहीं चाहती थी कि उसका दूल्हा घोड़ी पर बैठ कर आए और उसकी आंख भीगी हो और एक टांग छोटी हो और उसकी आयु चीलस ब्यालीस की हो। ब्याह की रात के दो ही साल

बाद वह भी मर जाए और अपने साथ उसकी चूड़ियों की खनक और मांग का सिंदूर ले जाए।

उसने मां की ओर अंतिम बार निहारा। उसकी आंखें भर आईं। उसका सिर चकराने लगा। फिर वह चुपचाप द्वार से निकल कर अंगनाई में आई, गाय के माथे को प्यार से चूमा और घर से बाहर आ गई। वह चलती गयी—चलती गयी। लोग कहते हैं कि पार्वती और शिवजी की प्रेम भरी बातें, उनका प्यार कभी पुराना नहीं होता। फिर पारो की बातें और प्यार क्यों ऐसा नहीं ? वह भी तो पार्वती है। उसका दूल्हा क्यों काना, लंगड़ा और बूढ़ा होगा। उसकी मांग का सिंदूर, उसकी चूड़ियों की खनक क्यों अजर और अमर नहीं ?

पैसा पास हो तो लड़का भी भला चंगा मिल जाता है। उसके बापू के ये शब्द उसके भीतर पिघले सीसे की तरह उतर गए थे। वह सामने की पहाड़ी पर चढ़ गई। चढ़ती ही गई।

और आज शिव की रात है। शहरों में लोग नफेरियां और शंख बजा रहे हैं, भजन कीर्तन चल रहा है।

अचानक उसका पैर फिसला। वह लुढक गयी और एक अंधेरी भयानक खाई में लुढकती हुई चली गयी। उसके मुख से एक चीख निकल कर वातावरण को चीरती हुई कैलाश के शिखरों से टकरा गई।

उसे ऐसा लगा जैसे कैलाश के हिम-मण्डित शिखर पर बैठे शिव चौंक गए। उन्होंने पार्वती की ओर बिना देखे ही अपना त्रिशूल उठाया और ध्वसंक नृत्य आरम्भ किया।

भूकंप आया, मकान गिरे, दरियाओं में बाढ़ आई, पहाड़ परस्पर टकराए और नटराज का ताण्डव-नृत्य जारी रहा।

—पारो, अरी पार्वती, तुम्हें क्या हो गया ?—डर गयी क्या ?—कोई डरावना सपना देखा है क्या ?

उसकी मां की कांपती आवाज़ कहीं दूर से आ रही थी।

—मां, मैं व्याह नहीं करूंगी।

पार्वती ने कहा और मां से लिपट गयी। बाहर गगन में बिखरे हुए तारे खिलखिला कर हंस पड़े।

●

निर्धनता से नहीं, बल्कि याचना से मनुष्य की दीनता प्रकट होती है।

'भोज प्रबन्ध' से

० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

वास्तव में सावन का महीना प्यार और मिलन का महीना है। और जब विरहिन आत्मा की पुकार सुन ली जाती है तो बिछुड़े मीत मिल जाते हैं। मन के कंवल खिल उठते हैं···और प्रसन्नचित्त गोरी की मन-वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं।

० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

पंजाबी लोक गीतों में सावन

● लोचन बख्शी

सावन श्रावन का पंजाबी रूप है। सावन का नाम लेते ही आंखों के सामने घनघोर घटाएं चित्रित होने लग जाती हैं। आकाश से धरती तक पानी ही पानी दिखाई पड़ता है। आकाश बादलों से ढक जाता है और धरती पर पानी की एक बारीक चादर सी बिछने लग जाती है। पानी कभी इक्की दुक्की बूंदों के रूप में बरसता है और कभी मूसलाधार वर्षा बन कर। ज्येष्ठ तथा आषाढ़ की धूप और तपन के कारण सूखे ताल-तलैया फिर से लहराने लग जाते हैं। किसी आन्तरिक उमंग से उत्तेजित तरंगें किनारों के बाहुपाश से निकल भागती हैं और मस्त अलबेली अदा से उछलती-बलखाती पानी की मटमैली चादर पर नाचने लगती हैं। वास्तव में ग्रीष्म ऋतु की चिलचिलाती गर्मी के पश्चात् वर्षा की यह बहार प्राणी-मात्र के मन पर बड़ा सुखद प्रभाव डालती है। और कवि का मन बरबस प्रशंसा से भर जाता है। केवल जन साधारण ने ही सावन के इस मादक प्रभाव को ग्रहण नहीं किया बल्कि पंजाब की भूमि में उत्पन्न हुए साधु-संतों और महापुरुषों ने भी इस का गुण गान किया है। सिख गुरुओं ने अपनी दिव्य वाणी में सावन ऋतु की महिमा का कितना सुन्दर बखान किया है :

"सावन सरस मना,
सावन सरसी कासनी,
मोरी रुण झुण लाया,
बहिनें सावन आया।"

वर्षा ऋतु का भारत के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। यूं तो भारत के सभी राज्यों में लोग वर्षा ऋतु को आदर की दृष्टि से देखते हैं, यहां तक कि इसकी पूजा करते हैं। आरती उतारते हैं, परन्तु पंजाब प्रान्त में तो सावन की छवि अनुपम दीख पड़ती है। कहीं तो सावन की घटायें उमड़ती हैं और बिना बरसे ही हवा में तैरती हुई चली जाती हैं। लोग मन में तरसते रह जाते हैं और किसी स्थान पर यह सुहानी ऋतु भरपूर यौवन में उतरती है और तपते हुए मनों और शरीरों को शान्त कर जाती है। ऐसा लगता है जैसे पंजाब की धरती पर पहुंच कर सावन की घटायें सम्भल जाती हैं। खेतों की हरयाली देख कर बिजलियां तड़पने लगती हैं और उस अनखिली धरती को झुक कर प्रणाम करती हैं, जिसके सम्बन्ध में पंजाब के एक अलबेले कवि ने कहा था :

"ऐथे जान आई, रूह आया, रब आया,
गीत असमानी आया दिल आया बखशदा,
ऐथे चाह दे असमान टुट्टे,
ऐथे हुस्न खुदाई दा अवतार आया।
ऐथे दाते बलकार आये
ऐथे साईं दे प्यारे आये
इस धरती विच कलगी वाले दे घोड़े दे सुमां दी टाप लगी।"

शायद इसी लिए पंजाब की इस धरती को प्रणाम करते समय जब सावन की घटायें झुकती हैं तो यूं लगता है जैसे वे अब इस धरती पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देंगी। और पंजाव देश की नारियां भी अपने गीतों में सावन का चंचल शृंगार करती नहीं थकतीं :

"शौक नाल मैं गिद्धे विच आवां,
बोली पावां, शगन मनावां,
सावन देआ बदला वे,
तेरा जस मैं गिद्धे विच गावां।"

—मन में चाव ले कर, मैं गिद्धे (लोक-नृत्य) में आती हूं, नाचती हूं और गिद्धे के शगन मनाती हूं, अरे सावन के बदरा, मैं गिद्धे के गीतों में, तेरा यशोगान करती हूं।

और फिर धीरे धीरे तालियां बजने लगती हैं। नूपुर छनक उठते हैं और गिद्धा मचल उठता है। न जाने कौन-सा गुप्तचर गांव की अल्हड़ जवानियों को इसकी सूचना दे जाता है। धीरे धीरे गांव की सभी युवतियां शृंगार करके, बन-संवर कर, एकत्रित होने लगती हैं। उनके गोटे किनारी वाले वस्त्र और चमकते हुए बहुरंग आभूषण एक विचित्र छवि प्रस्तुत करते हैं। मानो इन्द्रधनुष में से सूर्य की किरणें छन कर बिखर रही हों। वे सावन की आरती उतारती हैं। अनगिनत नारी स्वर मुखरित हो उठते हैं :—

"आया सावण दिल परचावन,
झड़ी लग गई भारी।
झूटे लैंदी मरियां भिज गई,
नाले राम प्यारी,
कुड़ती हरो दी भिज गई वरी दी,
किश्नों दी फुलकारी,
हरनामी दी सुत्थन भिज गई,
बहुते गोटे वाली
शामरानी दीयां भिजियां मेढिआं,
गिनती'च पूरियां चाली
सावन देआ बदला वे,
हीर भिज गई स्यालां वाली।"

—मन को मोह लेने वाला सावन का महीना आ गया है। झूला झूलती 'मारिया' भीग गई और साथ 'राम प्यारी' भी। 'हरो' की वरी वाली कमीज़, 'किश्नों' की फुलकारी और 'हरनामी' की गोटे वाली शिलवार भीग गई। चालीस मेढियों में गुंथे हुए 'शाम रानी' के केश भी भीग गये। अरे ओ सावन के मेघा ! तुमने तो 'स्यालां' की बेटी 'हीर' को भी भिगो दिया।

उमड़ते हुए यौवन के इस वेग को सावन की फुहारें रोक नहीं सकतीं। वर्षा उनकी गति में बाधक नहीं होती, बल्कि वर्षा के साथ साथ उनके हाथों और पैरों की थिरकन बढ़ने लगती है। कोई युवती तान छेड़ती है :—

"परले पासे मींह बस्से दा
ऊरले पासे न्हेरी,
सावण देआ बदला वे !
मुड़के होजा ढेरी।"

—उस ओर वर्षा हो रही है और इस ओर आंधी उठ रही है। अरे ओ सावन के मेघा, मेरी विनती सुन और एक बार फिर से मूसलाधार बरस जा। चौमासे के इन दिनों में जब धरती की प्यासी आत्मा सावन की फुहारों से तृप्त हो जाती है तो किसान

के होठों पर मुस्कान नाचने लगती है। उसके खेतों में फिर से हरियाली झूमने लगती है। पशु-पक्षी खुशी से फूले नहीं समाते। मोर नाचते हैं और पपीहा पी की रटन लगाता है तथा अमराई में कोयलिया की कूक गूंज उठती है। गांव के युवक इकट्ठे हो कर पकवानों की योजना बनाते हैं। घर घर में खीर पकाई जाती है, इसी लिये शायद पंजाब में यह कहावत प्रचलित है कि 'सावण खीर न खादिया, क्यों जमियों अपराधिया?' यदि तूने श्रावण मास में खीर नहीं खाई तो तू अपराधी है, तू जन्मा ही क्यों ?

सावन के महीने में पंजाबी युवकों के मन मस्ती में नाचने लगते हैं। बिल्कुल ऐसे जैसे वृक्षों में से अपने आप हरियाली फूट पड़ती है। युवतियों की देखा-देखी युवकों की टोलियों में भी गिद्धे की थिरकन पसरने लगती है :—

"छम छम, छम छम पैण फुवारां,
बिजली दे रंग न्यारे,
आवो भराओ, गिद्धा पाइए,
सानूं सावन सैनतां मारे !
फिर कद नच्चां गे ?
सावन विच नच्चन सारे।"

—छम छम फुहार पड़ रही है। बिजली के रंग न्यारे हैं, आओ भाइयो, मिल कर गिद्धे में नाचें। सावन हमें पुकार रहा है। सावन की इस ऋतु में तो सभी नाचते हैं।

इस ओर मस्ती में जाट नाच रहा है तो उधर गिद्धे की शौकीन इसकी 'नाजो गोरी' गा रही है :

"पहन पचर के चढ़ गई पींग ते,
डिग पई हुलारा खाके।
पैंण फुहारां, चमके बिजली,
मैनूं देख लै रांझिआ आके,
बदलां नूं देख रई,
मैं तेरा सुनेहा पाके।"

—हार श्रृंगार करके मैं झूला झूलने लगी और झूलते झूलते नीचे गिर पड़ी। फुहारें बरस रही हैं, बिजली चमक रही है। ओ रांझे, ज़रा मेरी ओर देख तो सही, मैं तो तेरा सन्देशा पा कर बादलों में खो गई हूं।

'नाजो गोरी' के श्रृंगार के लिये उसके प्रीतम ने विशेष रूप से उसके लिये बांके बनवाई थीं, परन्तु जल्दी में सुनार से 'नाजो' के मेच की बांके त्यार न हो सकीं। मन में गिद्धे का चाव ले कर नाजो अपनी ननदिया के साथ त्रिंजन की ओर चल पड़ी। सहसा गिद्धे में नाचती हुई नाजो अपने प्रीतम को सम्बोधन करके कहती है :

"सावण महीना, दिन गिद्धे दे,
कुड़ियां रल के आइयां,
नच्चण कुद्दन झूटन पींगां,
बडिआं घरां दियां जाइआं,
आह लै मित्रा कर लै खरिआं,
मेरे बांकां मेच न आइयां !
गिद्धा पा रइआं नन्दा ते भरजाइआं।"

—सावन का महीना है और गिद्धे के दिन हैं। लड़कियां टोलियां बना कर आई हैं। वे नाचती हैं, झूले झूलती हैं। इन में बड़े घरानों की बहु-बेटियां हैं। मेरे प्रीतम ! यह रहीं तेरी वांकें, ये मेरे मेच नहीं आईं। ननद और भौजाई मिल कर गिद्धे में नाच रही हैं।

पंजाब में आम रिवाज़ है कि चौमासे के इन दिनों में माताएं, प्रदेशों में विवाहित अपनी बेटियों को पीहर बुलवा भेजती हैं ताकि वे भी अपनी सखी-सहेलियों में रह कर सावन ऋतु का आनन्द लें। विवाहित बहनें अपने भाई की प्रतीक्षा करती हैं। उसे अपनी सास का उलहाना भाता नहीं जबकि वह कहती है :—

"तैनूं धियां नूं लैन न आए,
बाहलड़े भरावां वालिए।"

—अरी औ, अधिक भाइयों की बहन, तुझे तेरे भाई लेने के लिए नहीं आए !

"सावण आया नी सखिये सावण आया,
इक न आया, अम्मा जाया,
चड़दे ते सावण मेरा वीर नी आया,
सस ननान मुख मोड़िया ई।"

—सखी सावन आ गया है, परन्तु मेरा भाई नहीं आया। सावन मास के चढ़ते ही मेरा बीरन मुझे लेने आ गया है। परन्तु मेरी सास और ननद मुख मोड़ कर बैठ गई हैं।

बहन को भाई आ मिला। वह सास से विदा लेकर भाई के साथ पीहर चली गई। बचपन की सहेलियों के संग गिद्धे में नाचने और गाने लगी परन्तु कोई अभागिन ऐसी भी तो होती है जिसका बीरन उसे लेने नहीं आता। जिसका पति प्रदेश में है। वह उड़ते कागा के हाथ अपना संदेश भेजती है :

"ऊदियां, कुसुम्भियां, चोलियां, सुन माए मेरिये,
रंग रंग के भेज कि, सावण आया।

कीकण भेजां चोलिआं, सुन धीए मेरिये,
तेरा वेखण वाला दूर, कि सावण आया।
कंत नूं पानिआं चिट्ठियां, सुन जानी मेरेया,
तूं घर बगदा आ, कि सावण आया।
कीकण आवां गोरिये ! सुन जाने मेरिये !
राह बिच शूंकदे नाग, कि सावण आया।
नांगां नूं पान्नियां पिटारीआं, सुन जानी मेरेया,
तू घर बगदा आ, कि सावण आया'
कीकण आवां गोरिये, सुन जाने मेरिये,
राह बिच बगदे दरिया, कि सावण आया,
दरियावां विच पान्नियां बेड़ियां, सुन जानी मेरेया,
तू बन्दी कोल आ, कि सावण आया।''

—मां ! ऊदे और कसुम्भे रंग की चोलियां रंग कर मुझे भेज, कि सावन आ गया है। चोलियां मैं तुम्हें कैसे भेजूं ओ बिटिया, कि तेरा देखने वाला तो दूर है और सावन आ गया है। मैं अपने कंत को प्यार-पाती लिखूंगी—ओ साजना, बरखा बहार आ गई है और तू शीघ्र घर आ ! सजनी, कैसे आऊं रास्ते में फुंकारते हुए नाग हैं कि सावन आ गया है। नागों को मैं पिटारी में बन्द कर दूंगी, ओ साजना ! तूं शीघ्र घर आ जा। कैसे आऊं ओ सजनी ! कि रास्ते में नदियां बहती हैं कि सावन आ गया है। मैं नदियों में नौका डाल दूंगी, साजना, तू शीघ्र घर आकर इस दासी को अपना ले कि सावन आ गया है।

वास्तव में सावन का महीना प्यार और मिलन का महीना है। और जब विरहिन आत्मा की पुकार सुन ली जाती है तो बिछुड़े मीत मिल जाते हैं ; मन के कंवल खिल उठते हैं और प्रसन्न चित्त गोरी की मन-वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं।

●

अपना अपना सच

वेद राही

......लेखक के हाथ में तो केवल एक चुनाव रहता है कि वह किस पात्र या स्थिति को कहानी के लिये चुने। उस चुनाव में उसकी दृष्टि का सवाल रहता है, और दृष्टि में रहती है उसकी सामर्थ्य की सीमा।

इस स्तम्भ के अन्तर्गत 'शीराज़ा' के प्रत्येक अंक में जम्मू-कश्मीर के लेखकों के उनके जीवन तथा लेखन सम्बन्धी वक्तव्य प्रकाशित किये जायेंगे।

मैं कहानियां क्यों लिखता हूं ?

केवल पैसे कमाने की बात होती तो बहुत से ऐसे काम हैं, जो कहानियां लिखने से अधिक आसान हैं और जिन से अधिक आर्थिक लाभ हो सकता है। कई बार मैं यह भी सोचता हूं, क्या मैं ऐसी विशिष्ट कहानियां लिखता हूं कि लिखने के इस क्रम को बनाए रखूं ? क्योंकि मैं समझता हूं सृजन में विशिष्ट कुछ नहीं तो सर्जक बनने का दम्भ बनाए रखना बेकार है।

परन्तु यह सब सोचने भर से ही कुछ नहीं होता। इस विश्वास के बिना भी, कि मैं विशिष्ट कहानियां लिखता हूं, मैं लिखने से नहीं चूकता। लगता है लिखना ही मेरी नियति है।

कहते हैं कलाकार जन्म से ही अपने साथ ऐसे संस्कार लेकर पैदा होते हैं, जो उन्हें कलाकार बनने पर मजबूर करते हैं। मैं अपने सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं कह सकता। क्योंकि मुझे बचपन से ही ऐसा वातावरण मिला कि लगा कि लिखने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं। और लिखने का यह भूत सिर पर ऐसा सवार हुआ कि स्कूली पढ़ाई भी अधूरी रह गई।

जिस घर में मेरा बचपन बीता, वहां से अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित होती थीं। एक पुस्तक-प्रकाशन संस्था भी वहीं थीं। पुस्तकों से मेरा लगाव उंमाद की सीमा तक था। सारा जेब खर्च भी पुस्तकें खरीदने में चला जाता था। छोटी छोटी किताबों की एक अच्छी खासी लायब्रेरी बन गई थी। मुहल्ले भर के बच्चों को किताबें पढ़ने के लिए देना मेरी हॉबी था। "दास्ताने अमीर हमज़ा" और "अलिफ़ लैला" जैसे किस्से बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में ही पढ़ डाले थे। उन्हीं दिनों छोटी-छोटी बाल-कविताओं और कहानियों आदि से मेरा लेखन भी प्रारम्भ हुआ।

अपनी पहली कहानी—जिसे सही मानों में कहानी कहना चाहिए—मैंने सत्रहवें वर्ष में लिखी, जिसका शीर्षक था—"अंधेरों से बाहर"। उसमें एक नवयुवक प्रेम में असफल होकर आत्महत्या करने जा रहा है; तभी उसे पता चला कि उसकी एक मात्र बहिन निराश्रय हो गई है, और वह अपनी बहिन के लिए आत्म-हत्या का विचार छोड़, जीने का संकल्प कर लेता है।

यह कहानी लिखकर मुझे महसूस हुआ था कि कहानी-विधा अभिव्यक्ति का अत्यंत सशक्त माध्यम है। उस समय, जब यह कहानी लिखी थी; मैं स्वयं जीने का मार्ग खोज रहा था। तीन-चार वर्ष लगातार मैंने असह्य आन्तरिक पीड़ा भोगी थी। दम घुट गया था और आंखों के आगे अंधेरा छा गया था। उस अंधेरे से बाहर आना मेरे लिए दूसरा जन्म लेने के बराबर था।

एक ही ज़िन्दगी में कई जन्म लेने पड़ते हैं—यह मेरा विश्वास है। विश्वासों के कई ध्रुव हर समय मेरी आंखों के सामने रहते हैं। ऐसा ही एक ध्रुव है—ज़िन्दगी जीने के लिए है। दूसरा जन्म मैंने इसी विश्वास के सहारे लिया था, और अपने आपको एक मार्ग के सिरे पर ला खड़ा किया था, जिस मार्ग का नाम था – साहित्य—जिस से मेरी दोस्ती बचपन से थी। लगभग दस वर्षों से पूरी तन्मयता और गम्भीरता से उसी मार्ग पर चल रहा हूं। कह नहीं सकता कि मैंने बहुत कुछ पाया है, लेकिन सब से बड़ी उपलब्धि यही मानता हूं कि मैं जी रहा हूं। पिछले दस वर्षों के जीने में मैंने प्यार, ममता, हर्ष, विषाद के जो अनुभव प्राप्त किए हैं, वे ज़िन्दगी के पद्चिन्ह हैं, और उन्हीं की तस्वीरें मेरी कहानियों में हैं—मेरी अपनी दृष्टि के साथ।

अपने बचपन की एक अजीब बात याद है मुझे। लगता था मैं एक भूल भुलैयां में फंसा हुआ हूं। अपने आस-पास का सब कुछ अवास्तविक लगता था। यहां तक कि चलते-फिरते लोग मुझे धोखा दे रहे लगते थे। किसी गली में चलते हुए मैं अचानक रुक जाता था। सामने वही जानी-पहचानी गली होती थी, लेकिन पीछे जो गली छोड़ कर आया था मैं, वह अपनी जगह पर होगी—मुझे विश्वास नहीं होता था। चलते हुए मुझे एहसास होता था मैं ज्यों ज्यों आगे बढ़ रहा हूं, पीछे का सब ग़ायब होता जा रहा है।

मुझे अच्छी तरह याद है मैं वर्षों उसी भूल-भुलैयों में उलझा रहा था। मैंने यह तो कभी नहीं सोचा था मैं क्या हूं—कैसे और क्यों आया हूं इस दुनिया में—लेकिन मुझे यह वहम रहता था कि आस-पास सब कुछ झूठ है, कि मैं आंख बन्द करता हूं तो सब ग़ायब हो जाता है, और आंख खोलता हूं तो सब यथास्थान आ मौजूद होता है।

अब मुझे याद नहीं कि मैं कब भूल-भुलैयों के उस चक्र में से निकला था, लेकिन काफ़ी वर्ष बीत गए लगते हैं, क्योंकि अपनी सुरक्षित रचनाओं में मुझे कहीं भी उस धोखे का आभास नहीं मिलता। अब हर रात जब मैं सोता हूं तो इस यकीन के साथ कि यह रात सबके लिए है, कि सब सोयेंगे—और सुबह समयानुसार सूरज निकलेगा—रौशनी होगी। अब केवल मेरी नज़र को छलने के लिए मकान, गलियां और नगर नहीं बनते—और लोग मुझे ही धोखा देने के लिए चलते-फिरते और बातें नहीं करते—ये सब वास्तविक हैं—यह सब सच है—यह सब सच है। और अपनी कहानियों द्वारा मैं इसी सच का इतिहास लिखता हूं।

कहानियों के लिए पात्र मुझे खोजने नहीं पड़ते; परिस्थितियों की तलाश मुझे नहीं रहती, कि मैं उन्हें कहानियों में ठूंसने का दुःसाहस करूं। विचार भी उधार नहीं लेता कि अपने आपको दार्शनिक के रूप में पेश करूं। (पेश करने से मुझे बेहद अलगाव है) पात्र अपने असली रूप में ही रहें तो कहानी सजीव बनती है। परिस्थितियों पर लेखनी का रंग नहीं चढ़ना चाहिए। देखा जाए तो लेखक के हाथ में केवल एक चुनाव रहता है कि वह किस पात्र या स्थिति को कहानी के लिये चुने; उस चुनाव में उसकी दृष्टि का सवाल रहता है, और दृष्टि में रहती है उसके सामर्थ्य की सीमा।

प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र में किसी छोटे या बड़े संघर्ष में रत रहता है। वह कभी थक भी जाता है, हार भी जाता है और टूट भी जाता है—लेकिन उसके संघर्ष की कहानी समाप्त नहीं होती। वह अपने क्षेत्र में अनेक अन्यों से जुड़ा रहता है। उसके बाद भी उसके संघर्ष की कड़ी दूसरों के संघर्ष से जुड़ी रहती है। इस कभी न समाप्त होने वाले संघर्ष का ही दूसरा नाम कहानी है।

अपने तौर पर कहानी लिख कर मैं अपने आपको दूसरों के समीप पाता हूं। मुझे वह अपनी कहानी भी लगती है, और दूसरों की भी। मेरे विचार में संसार की पहली कहानी का जन्म तभी हुआ होगा, जब किसी के मन में किसी के प्रति सहानुभूति जगी होगी, या कोई लगाव पैदा हुआ होगा। कहानीकार और कहानी के पात्रों में एक गहरा रिश्ता होता है। समय और स्थिति के धागों में वे बंधे होते हैं। एक सम्बन्ध धरती का भी होता है। धरती की गंध भी हमें एक सूत्र में बांधती है। मुझे याद है जब मैंने अपनी मातृभाषा डोगरी में पहली कहानी लिखी तो मुझ पर एक नशा सा छा गया। मुझे महसूस हुआ कि तब तक मैं अपनी ही सामर्थ्य से अपरिचित था। वह कहानी लिख कर मुझे अपनी धरती की गंध का पता चला। उसके बाद मैंने हिन्दी में जो कहानियां लिखीं, उनका धरातल अधिक वास्तविक था।

धरती या पात्रों से पहचान होने में देर नहीं लगती, यदि लेखक पूर्वग्रह छोड़कर ईमानदारी को लिखने की पहली शर्त मान कर चले। जीवन के संघर्ष ने मुझे अपने शहर जम्मू से बहुत दूर बम्बई जैसे महानगर में ला फेंका है, लेकिन लगता है यह भी मेरी ही धरती है। मैं कहीं भी अपने आपको अजनबी नहीं पाता। समुन्दर की विशालता में मुझे पहाड़ों की गम्भीरता और व्यापकता के दर्शन होते हैं। लेकिन यहां का जीवन अधिक गुथीला है। पुरानी और नई सभ्यता का टकराव यहां अधिक प्रबल है। मूल्यों के बदलने की गति बहुत तेज़ है। भौतिकवाद मनुष्य को एक ऐसे भयंकर रास्ते पर ले जा रहा है, जहां दिलों की गरिमा ही चुक गई है। इन बड़े शहरों में मनुष्य आर्थिक दबाव से इतना दब गया है कि उसकी आंखें बाहर आने लगी हैं। यहां जीवन सरस नहीं कठोर होता जा रहा है।

लेकिन कुछ भी हो जीवन तो इन बड़े नगरों में भी जिया जा रहा है—और जिन्दगी के हर पहलू को लेकर जिया जा रहा है। मैं जानता हूं, जिस प्रकार मनुष्य भौतिकवाद की अति, मानव-मूल्यों की क्षीणता या परिस्थितियों की कठोरता से भाग नहीं जाता, वैसे ही एक लेखक भी इन सब को भोगता, सहता और अनुभव करता है। अनुभव करने के बाद वह उसे अभिव्यक्ति भी देता है। इस अभिव्यक्ति देने के क्रम में वह एक ही जीवन को दूसरी बार जीता है—एक ही स्थिति को दो बार भोगता है।

स्थितियों को दो दो बार भोग कर भी मेरी तृप्ति नहीं होती। कुछ और देखने —कुछ और सहने—कुछ और अनुभव करने - और फिर इस सब को अभिव्यक्त करने की आकांक्षा कभी नहीं मरती।

मैं क्यों लिखता हूं ?—क्या मेरी कहानियों में कुछ ऐसा विशिष्ट है कि मैं अपने लिखने के क्रम को बनाए रखूं ?—ऐसे अनेक प्रश्न मैं अपने आप से करता हूं। लेकिन लिखने की इस अकांक्षा के सामने आकर ऐसे अनेक प्रश्न मूक हो जाते हैं। मैं स्वयं चुप हो जाता हूं। लगता है लिखना ही मेरी नियति है।

●

समीक्षा

टूटते वृक्ष नई पौध : कहानी संग्रह

प्रकाशक : गीतांजलि प्रकाशन, १२वां रास्ता, खार, बम्बई

पृष्ठ संख्या : १२४

मूल्य : दो रुपये

● समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियां भेजना अनिवार्य है।

श्री वेद राही के कहानी-संग्रह में छः कहानियां हैं जिन में पांच का कलेवर छोटा, कहानी जैसा ही है, किन्तु 'टूटते वृक्ष नई पौध' को एक लम्बी कहानी या लघु-उपन्यास कहा जाएगा।

लगभग सभी कहानियां ग्रामीण पहाड़ी जीवन की विशद् झांकी प्रस्तुत करती हैं, जिस से कहानीकार के ग्राम्य-जीवन-सम्बन्धी गहरे अध्ययन और उसके प्रति उसकी अदम्य संवेदनशीलता का पता चलता है। नागरिक जीवन के विषाक्त वातावरण से दूर चीड़ों और देवदारों की सुखद छाया में नदियों, झरनों की गोद में बसा सरल पहाड़ी ग्राम्य-जीवन भी कभी कभी अपनी ही रूढिगत यातनाओं से पीडित हो कर कैसे कराह उठता है, इसे आप 'ये पर्वत मेरे नहीं' 'उत्तराधिकारी' और 'टूटते वृक्ष नई पौध' शीर्षक कहानियों में देख सकेंगे। 'टूटते वृक्ष नई पौध' में तो श्री राही ने 'दोहरी' जैसी विवाह-विषयक पहाड़ी कुप्रथा को अत्यन्त कलात्मक ढंग से उभारा है।

'दीदी कब आयेगी' में नागरिक जीवन की शिष्टता भरी व्यवस्था पर गोपी की अबोध ग्रामीण सरलता के माध्यम से एक चुभता व्यंग्य किया गया है।

'प्रेम की अन्तिम भेंट' नामक कहानी नागरिक जीवन से पूर्णतः जुड़ी होने के कारण पहली नज़र में भले ही दूसरी कहानियों से अलग लगे पर 'चौधरी' के नागरिक छल-कपट से अनभिज्ञ सरल चरित्र को देखते हुए, यह भी शेष कहानियों में घुली-मिली प्रतीत होती है।

चरित्र-चित्रण में श्री राही के कौशल की बरबस सराहना करनी पड़ती है और इस प्रकार सभी कहानियां श्री राही के कुशल कहानी लेखन का स्वयं प्रमाण हैं। हां, भाषा में कहीं कहीं शिथिलता दृष्टिगत होती है और मुद्रण दोष के कारण पाठक को कहीं कहीं रुकना पड़ता है। जैसे 'स्रोत' शब्द बार बार 'स्तोत्र' के रूप में छपा है। भाषा-सम्बन्धी शिथिलता के आभास का एक और भी कारण हो सकता है। वह यह कि श्री राही ने लगभग ये सभी कहानियां मूलतः डोगरी में लिखी हैं। इन्हें हिन्दी रूप भले ही उन्होंने स्वयं दिया है, परन्तु अनुवाद कितना भी कलात्मक क्यों न हो उसमें मूल का कुछ न कुछ छूट ही जाता है।

—प्रो० सुभाष भारद्वाज

- **श्री रमेश बख्शी, सम्पादक—ज्ञानोदय—कलकत्ता २७**

  ...विश्वास है कि हिन्दी 'शीराज़ा' में जम्मू-कश्मीर की ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य की तस्वीर देखने को मिलेगी।

- **श्री राजेन्द्र अवस्थी, सम्पादक—नंदन—नई दिल्ली**

  ...मेरा सम्पूर्ण सहयोग आप के साथ रहेगा ही, मेरा विश्वास है, सभी हिन्दी-लेखक आप को सहयोग देने में पीछे नहीं रहेंगे।

  हार्दिक शुभकांक्षाओं और अमित स्नेह के साथ......

- **श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र, वाराणसी**

  ...यह जान कर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप 'शीराज़ा' का सम्पादन कर रहे हैं।......मेरा सहयोग बराबर मिलेगा।

  प्रवेशांक के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामनाएं स्वीकार कीजिए।

- **डा० रमासिंह, जोधपुर**

  ...हिन्दी साहित्य की सेवा में निश्चय ही यह एक ठोस कदम है, मेरी हार्दिक शुभ कामनाएं व सक्रिय सहयोग आप के साथ है।

- **श्री प्रकाश पण्डित, नई दिल्ली**

  ...मेरी शुभ कामनाएं स्वीकार कीजिए, आशा है आप के सम्पादन एवं निर्देशन में पत्रिका सर्वगुण सम्पन्न सिद्ध होगी।

  ...सहयोग के लिए मुझे सदैव तत्पर पायेंगे।

- **श्री रामानन्द दोषी, सम्पादक—कादम्बिनी—नई दिल्ली**

  ...हार्दिक प्रसन्नता हुई......यह एक सराहनीय कार्य है। आशा है आप के सम्पादन एवं परिश्रम से पत्रिका सुन्दर निकलेगी। कृपया मेरी शुभ कामनाएं स्वीकारें।

- **श्री अनन्त गोपाल शेवडे, नागपुर**

  ...आशा है कि 'शीराज़ा' के माध्यम से भारत की एकता का सन्देश घर घर पहुंचेगा और अहिन्दी भाषियों को हिन्दी की सादगी और सौन्दर्य का परिचय प्राप्त होगा।......मेरी शुभ कामनाएं स्वीकार करें।

- **श्री ठाकुर पुंछी, नई दिल्ली**

  ...मुझे विश्वास है कि आप के सम्पादन में 'शीराज़ा' पर्याप्त उन्नति करेगा।

● श्री वेद राही, बम्बई

···हार्दिक प्रसन्नता हुई, सम्पादन एक दृष्टि है और मैं समझता हूं, आप की अपनी दृष्टि है।······सच-मुच यह पद आप के ही योग्य था······मेरा सहयोग आप के साथ रहेगा······।

● श्री लोचन बख्शी, आकाशवाणी, जम्मू

···मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप की देख-रेख में 'शीराज़ा' अवश्य उन्नति करेगा।

● श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प' प्रिंसिपल, राजकीय कालेज़, पुंछ

···'शीराज़ा' के प्रकाशन पर मेरी शुभ कामनाएं स्वीकार करें।

● श्री काशीनाथ दर, श्रीनगर, कश्मीर

···वधाई स्वीकार करें, परमात्मा करे आप मां भारती के उद्धार के लिए इस अहिन्दी प्रदेश में भगीरथ प्रयत्न करते रहें।

● श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप' श्रीनगर, कश्मीर

···निश्चय ही······यह प्रयास सराहनीय है। मैं इस पत्रिका के दीर्घ-जीवन तथा सफलता की कामना करता हूं।

● प्रो० देवरत्न शास्त्री, कठुआ

···आशा है आप जैसे तरुण, उत्साही साहित्यकार के सतत परिश्रम से 'शीराज़ा' साहित्य की श्री वृद्धि कर सकेगा।

● श्री पुष्करनाथ, श्रीनगर, कश्मीर

···प्रसन्नता हुई कि 'शीराजा' हिन्दी में भी निकल रहा है और वह भी आप जैसे सुयोग्य साहित्यकार के सम्पादन में। मेरा सहयोग आप के साथ है।

● श्री सुतीक्ष्ण आनन्दस, मंत्री, हिन्दी साहित्य संगम, जम्मू

···ऐसा लग रहा है—कोई कमी पूरी होने जा रही है। विश्वास है, आप के सम्पादन में 'शीराज़ा' मेरी कल्पना से भी बढ़-चढ़ कर होगा।

● श्री चन्द्रकान्त जोशी, अनन्त नाग, कश्मीर

···'शीराज़ा' के सम्पादक आप नियुक्त हुए हैं, यह मेरे लिए हर्ष और मान दोनों का विषय है।······मेरा सहयोग मिलता रहेगा।

●

जम्मू-कश्मीर अकादमी की कुछ उपलब्धियां

१. जम्मू तथा श्रीनगर में संगीत-विद्यालयों की स्थापना :

सन् १६६५ अप्रैल से जम्मू-कश्मीर राज्य की शीतकालीन राजधानी जम्मू तथा ग्रीष्मकालीन राजधानी श्रीनगर में दो संगीत-विद्यालयों की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम है। इन विद्यालयों में शास्त्रीय संगीत के साथ साथ जम्मू में पहाड़ी संगीत-परम्परा तथा श्रीनगर में 'सूफियाना कलाम' नाम से प्रसिद्ध स्थानीय लोकप्रिय विशिष्ट संगीत-पद्धति के शिक्षण-संरक्षण के लिए पहली बार उचित ढंग से प्रयत्न किया जाएगा। इन विद्यालयों में बच्चों को नृत्य तथा चित्रकला सिखाने का प्रबन्ध भी किया गया है।

२. १६६३-६४ में अकादमी के प्रकाशन :

इस वर्ष की अवधि में निम्नलिखित तेरह रचनाएं प्रकाशित की गईं :

(१) काशर सरगम (भाग I) भारतीय-इरानी परम्पराओं से समृद्ध कश्मीरी शास्त्रीय संगीत का स्वर-अंकन (Notation)
(२) दीवान-ए-ग़नी (फ़ारसी)
(३) कश्मीरी ज़बान और शायरी—(भाग III) ले० स्वर्गीय अब्दुल अहद आज़ाद
(४) सोन अदब (१९६०—६२ का कश्मीरी साहित्य-संकलन)
(५) हमारा अदब १९६०—६२ (उर्दू)
(६) सूफी शायर (कश्मीरी) (भाग I)
(७) महमूद गामी (कश्मीरी) (कवि तथा काव्य)
(८) वली उल्लाह मट्टू (कश्मीरी) (कवि तथा काव्य)
(९) वतन छू नाद लायन (कश्मीरी) (राष्ट्रीय कविता-संग्रह)
(१०) वतन की पुकार (उर्दू) (राष्ट्रीय कविता-संग्रह)
(११) देश-प्यार के गीत (हिन्दी)
(१२) देश-प्यार दे गीत (डोगरी)
(१३) साढ़ा साहित्य १९६३ (डोगरी)

३. प्रकाशन-सहायता (Subsidies)

कश्मीरी, उर्दू, हिन्दी, डोगरी, फारसी और अंग्रेज़ी की चौबीस पुस्तकों के प्रकाशन के लिए १९६३-६४ में १०,२०४.०० रुपए की सहायता दी गई।

४. नए नाटक-प्रतियोगिता :

इस वर्ष स्थानीय लेखकों में नाटक-लेखन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के निमित्त

नए लिखे गए नाटकों की पांडुलिपियों की एक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिस में निम्न दो रचनाएं पुरस्कृत की गईं :—

(१) रास्ता कांटे और हाथ (हिन्दी) लेखक : नरेन्द्र खजूरिया (प्रथम पुरस्कार)

(२) साञ्झा मोरचा (पंजाबी) लेखक : विजय सुमन (द्वितीय पुरस्कार)।

५. प्रकाशित पुस्तकों पर पुरस्कार :

अकादमी की ओर से प्रतिवर्ष श्रेष्ठ प्रकाशित रचनाओं पर एक हजार रुपए का प्रथम तथा सात सौ रुपए का द्वितीय पुरस्कार देना स्वीकार किया गया है। १९६३-६४ में रियासती लेखकों की हिन्दी, कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, पंजाबी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी की रचनाओं पर कुल मिला कर ८,२०० रुपए के पुरस्कार दिए गए।

६. संगीत तथा चित्रकला प्रतियोगिता :

इस वर्ष अकादमी की ओर से कलाकारों के लिए संगीत तथा चित्रकला की अलग अलग प्रतियोगिताएं जम्मू तथा श्रीनगर में आयोजित की गईं। संगीत प्रतियोगिताओं में १४५० रु० के पुरस्कार दिए गए। चित्रकला प्रतियोगिताओं में जम्मू तथा श्रीनगर दोनों स्थानों पर कुल मिला कर १६०० रुपए के पुरस्कार दिए गए।

७. चित्रकला प्रदर्शनियां :

अकादमी की ओर से, जम्मू तथा श्रीनगर में रियासत के कलाकारों की कृतियों की दो प्रदर्शनियां आयोजित की गईं। इन प्रदर्शनियों में श्रेष्ठ कलाकृतियों पर २६०० रुपए के चौदह पुरस्कार प्रदान किए गए।

८. चित्रकारों को सहायता :

इस वर्ष अकादमी ने रियासत के चित्रकारों को उनकी कलाकृतियों के प्रदर्शन के निमित्त ३५०० रुपए की आर्थिक सहायता दी।

९. सांस्कृतिक आयोजन :

इस वर्ष अकादमी की ओर से जम्मू तथा श्रीनगर में स्थानीय नाटक-संस्थाओं के द्वारा चार नाटकों के प्रदर्शन का प्रबन्ध किया गया। इसी तरह जम्मू तथा श्रीनगर में सात संगीत-सभाओं का आयोजन हुआ, जिन में शास्त्रीय-संगीत के भारत-ख्यात कलाकारों ने भी भाग लिया।

१०. अन्तर् प्रादेशिक सांस्कृतिक प्रदर्शन :

(i) मणिपुरी सांस्कृतिक दल ने सितम्बर १९६३ में श्रीनगर, अनन्तनाग, सोपुर तथा बारामूला में बड़े सुन्दर प्रदर्शन किए।

(ii) मैसूर राज्य के कल्चरल ट्रूप ने मार्च १९६४ में जम्मू, उधमपुर तथा कठुआ में अपनी कला का प्रदर्शन किया।

(iii) इसी योजना के अन्तर्गत अकादमी ने कुमारी यामिनी कृष्णामूर्ति को निमन्त्रित किया। इन्होंने २४-२५ मार्च १९६४ को जम्मू में दो नृत्य-प्रदर्शन प्रस्तुत किए।

(iv) इसी योजना के अन्तर्गत हमारी रियासत से भी ३१ कलाकारों का एक दल, जिस में लद्दाख, कश्मीर तथा जम्मू तीनों प्रदेशों के प्रतिनिधि कलाकार सम्मिलित थे, प्रो० नीलाम्बरदेव (डिपुटी सैक्रेटरी, अकादमी) के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश तथा बिहार में कला-प्रदर्शन के लिए गया। इस दल ने २६-१२-६३ से २२-१-६४ तक दोनों राज्यों में पांच-पांच सफल प्रदर्शन प्रस्तुत किए।

●

नियम

- 'शीराज़ा' में प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक दिया जाता है।
- स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक महीने के अन्दर भेज दी जाती है।
- केवल वही अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई जाती हैं, जिनके साथ लेखक का पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा होता है।
- अस्वीकृत रचनाओं के सम्बन्ध में कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया जाता।
- कश्मीरी व डोगरी भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी उच्चस्तरीय लेखों का हम सहर्ष स्वागत करते हैं।
- 'शीराज़ा' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।
- अनुवाद के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना आवश्यक है।

●


JAMMU AND KASHMIR
ACADEMY OF ART CULTURE & LANGUAGES